10

शिरोमणि को कस कर पकड़े रहना

कुलुस्सियों 2:16–23

यह दिखाने के बाद कि व्यवस्था की आज्ञाओं को मिटा दिया गया है और सब दुष्ट सेनाओं को पराजित कर दिया गया है (2:8 और 10 चर्चा देखें) पौलुस तर्कसंगत निष्कर्ष की ओर आगे बढ़ा। उसने कुलुस्सियों को इन आज्ञाओं को मानने के लिए बाध्य होने या दूसरों को मनुष्यों की बनाई धार्मिक परम्पराओं के अधीन होने के लिए विवश करने को महसूस न करने को कहा था।

व्यवस्था के बजाय मसीह की मानो (2:16, 17)

[16]इसलिए खाने-पीने या पर्व या नए चान्द, या सब्तों के विषय में तुम्हारा कोई फैसला न करे। [17]क्योंकि ये सब आने वाली बातों की छाया हैं, पर मूल वस्तुएं मसीह की हैं।

''इसलिए खाने-पीने या पर्व या नए चान्द, या सब्तों के विषय में तुम्हारा कोई फैसला न करे'' (2:16)

इसलिए (*oun*) का आरम्भिक शब्द इस कथन का पिछले कथनों के निष्कर्ष के रूप में परिचय कराता है। पौलुस ने कहा कि कुलुस्सियों को यह जानने के लिए कि परमेश्वर को कैसे प्रसन्न करें, यीशु की ओर देखना चाहिए, यीशु की शिक्षाओं को मानना चाहिए चाहे दूसरे लोग जो भी कहें।

शायद कुलुस्से के कुछ लोग, विशेषकर यहूदी पृष्ठभूमि वालों को लगता था कि मसीही लोग व्यवस्था की आज्ञाओं और अन्य सामाजिक नियमों को त्यागने में बहुत आगे निकल गए हैं। कुलुस्से के लोग अब इन से बंधे नहीं थे, क्योंकि अब वे केवल यीशु के अधीन थे। उन्हें उस समाज के बजाय जो उन्हें व्यवस्था या उनके अपने बनाए नियमों को न मानने पर उन्हें दोषी ठहराना चाहता था, उसके आगे अपने आपको देना था।

आयत 16 तक पहले लाने वाले कथनों में उन कारणों का खज़ाना है, कि कुलुस्से के लोगों को केवल यीशु को मानना आवश्यक था:

- बुद्धि और ज्ञान के सारे भण्डार उसी में हैं (2:3)।
- वह परमेश्वरत्व की परिपूर्णता है (2:9)।
- कुलुस्से के लोग उसमें भरपूर थे (2:10)।

- वह सारी प्रधानता और अधिकार का शिरोमणि है (2:10)।
- उन्हें बपतिस्मे के द्वारा उसका खतना मिला था (2:11, 12)।
- बपतिस्मे में उन्हें जीवित किया गया था और उनके अपराध क्षमा किए गए थे (2:13)।
- उसने व्यवस्था की विधियों को अपने क्रूस पर कीलों से जड़कर रद्द कर दिया था (2:14)।
- उसने प्रधानताओं और अधिकारों को उतार दिया था (2:15)।

पौलुस के इस निष्कर्ष का कि कुलुस्सियों को व्यवस्था के नियमों से नहीं चलाया जाना चाहिए या उन अधिकारों के अधीन नहीं रहना चाहिए, जो बुराई के वश में हैं, आधार विस्तृत संदर्भ के बजाय वर्तमान संदर्भ हो सकता है। 2:14 में उसने बताया कि व्यवस्था को मिटा दिया गया था, और 2:15 में उसने कहा कि सब विरोधी शक्तियों को पराजित कर दिया गया था। अपने काम के द्वारा यीशु ने उनकी शक्ति को खत्म कर डाला था और उनके अधिकार के ऊपर विजय दिलाई थी। इस कारण कुलुस्सियों को यीशु द्वारा दिलाई गई विजय से आनन्दित होना चाहिए।

पिछले तर्क देने के बाद पौलुस ने और कारण बताए कि कुलुस्सियों को मानवीय अधिकार से उनके ऊपर थोपे गए नियमों से क्यों नहीं चलना चाहिए, वे नियम व्यवस्था के हों या मनुष्यों के बनाए हुए।

कुलुस्सियों को विशेष भोजन और पेय की पाबंदी नहीं थी। यीशु ने स्वयं समझाया था कि हर प्रकार का भोजन शुद्ध है (मरकुस 7:19)। इन मसीही लोगों को न ही यहूदी पर्वों को मनाने की आवश्यकता थी और न उनसे नये चांद के यहूदी जश्न को मनाने की उम्मीद या सब्त के दिन विश्राम करने की आज्ञा थी। वे इन नियमों से मुक्त थे और उन्हें ऐसे मामलों में किसी को उनका **फैसला न** करने देने को कहा गया था। इस संदर्भ में और अन्य आयतों में पौलुस द्वारा इस्तेमाल किए गए क्रिया शब्द ''फैसला करे'' (*krinō*) को देख सके ''पक्षपात पूर्ण फैसला, दण्ड देने'' का संकेत दिया जाना चाहिए। उसने घोषणा की कि ''सो आगे हम एक दूसरे पर दोष न लगाएं'' (रोमियों 14:13; देखें रोमियों 14:3, 4; 1 कुरिन्थियों 10:29), लिखकर अलग-अलग भोजनों के खाने के सम्बन्ध में मसीही स्वतन्त्रता की घोषणा की। उसने भोजनों के सम्बन्ध में यह भी लिखा कि ''कोई वस्तु अस्वीकार करने के योग्य नहीं है'' (1 तीमुथियुस 4:3-5)।

यीशु के अधिकार और काम के द्वारा कुलुस्से के भाइयों को इन रीतियों को मानने की ज़िम्मेदारी से छुड़ाया गया था। इस कारण उन्हें किसी को भी उनका न्याय कठोरता पूर्वक करने, उन्हें दण्ड देने या उन्हें हिसाब देने के लिए बुलाने की अनुमति नहीं देनी थी। यदि वे कुछ रीतियों का पालन न करने को चुनते तो उन्हें यह अधिकार था कि उन रीतियों को मानना चुनें या न। इनमें से किसी भी मामले में अपनी स्वतन्त्रता का इस्तेमाल करके उन्होंने दूसरों को ठोकर नहीं देनी थी या साथी मसीही लोगों को गलत कारण के लिए पुरानी पड़ चुकी प्रथा को नहीं मनवाना था, उन्हें अपनी स्वन्त्रता में आगे बढ़ना था न कि उस रीति में पड़ना (रोमियों 14:13-15, 19-21; 1 कुरिन्थियों 8:8-13)। दूसरी ओर उन्हें दूसरों को वे रीतियां जो नई वाचा में नहीं थीं, थोपकर मसीह में उनकी स्वतन्त्रता को छीनने की अनुमति नहीं थी।

पौलुस ने समझाया कि इन मसीही लोगों को इन पर व्यवस्था की शर्तों और अन्य रीतियों को जो मसीह की नहीं हैं, थोपने वालों का सामना कैसे करना चाहिए। उसने यहूदी मसीही लोगों की मांगों को मानने से इनकार कर दिया, जिन्होंने तीतुस का खतना किए जाने पर ज़ोर दिया था (गलातियों 2:3-5)। कुलुस्से के यहूदी मसीहियों को अधिकार था कि वे व्यवस्था की रीतियों को मानें या न मानें। परन्तु किसी को भी उन पर यहूदी रीतियों या मनुष्यों की परम्पराओं को थोपने का अधिकार नहीं था। मसीही लोगों से जब मनुष्यों के बनाए नियमों को मानने की शर्त रखी जाती है, तो वे हानि रहित प्रतिबन्ध नहीं रहते बल्कि वे हानिकारक तानाशाहों द्वारा थोपे गए नियम बन जाते हैं।

यदि कुलुस्से के लोगों को इन सांस्कृतिक नियमों को मानने को मजबूर किया जाता तो उन्होंने उन्हीं शक्तियों के वश में हो जाना था जिन से यीशु ने उन्हें छुड़ाया था। उन्होंने बुराई की शक्तियों पर उसकी विजय के लाभों को नहीं ले पाना था।

जो नियम पौलुस ने बताए वे केवल अस्थाई बातों के लिए थे। वे केवल परछाईं थे न कि वास्तविकता। वे अप्रभावी परछाइयां रहनी थी जबकि वास्तविकता मसीही लोगों के मानने के लिए वास्तविक बन जानी थी।

पौलुस यह नहीं कह रहा था कि कुलुस्से के लोग खाएं-पीएं नहीं या पर्व, नये चांद और सब्तों को न मनाएं, बल्कि वह कह रहा था कि भाई इन रीतियों को मानने को विवश नहीं हैं और उन्हें किसी को इन्हें उनके मानने या न मानने के सम्बन्ध में उनका न्याय कठोरता से करने नहीं देना चाहिए। यह उद्धार की बातें नहीं थीं, इस कारण कुलुस्से के लोग अपने विवेक के अनुसार इन्हें कर सकते थे। वे इन मामलों में चुनाव करने को स्वतन्त्र थे, जब तक किसी निर्बल भाई का इन रीतियों से नाश न हो (रोमियों 14:1-21; 15:1-3; 1 कुरिन्थियों 8:8-13; 10:23-33; देखें गलातियों 4:10)। कुलुस्सियों के लिए इन पाबंदियों से बंधना बेतुका होना था क्योंकि यीशु ने उन बातों को जो उन पर थोपी जानी थी, रद्द करके उन्हें पराजित कर दिया था।

पौलुस ने इन के मनाए जाने को उदाहरणों के रूप में इस्तेमाल किया। उसने उन सभी सम्भावित रीतियों को शामिल नहीं किया जिन्हें दूसरे कुलुस्सियों के ऊपर थोपने की कोशिश कर सकते थे। अपनी बात को समझाने के लिए पौलुस ने उन पांच रीतियों को बताया, जो इस्राएलियों के लिए माननी आवश्यक थीं, परन्तु मसीही लोग उसे मानने को बाध्य नहीं थे। शायद अपनी बात पर ज़ोर देने के लिए पौलुस व्यवस्था की बात कर रहा था कि इन "पर्वों," "नये चांदों," और "सब्तों" तीनों को मनाए जाने की बात बिल्कुल इसी क्रम में LXX में दी गई है (होशे 2:11; यहेजकल 45:17)। आवश्यक रूप में यही सूची और कहीं मिलती है पर अलग क्रम में (1 इतिहास 23:31; 2 इतिहास 2:4; 31:3)। पौलुस द्वारा बताई पांचों रीतियां व्यवस्था में शामिल थीं।

आयत 16 वाली सूची में दो श्रेणियां हैं, जो (1) शरीर में क्या लिया गया है और (2) विशेष यहूदी पर्वों और दिनों को मनाए जाने को लागू करती है। इनमें नैतिकता, आत्मिक विकास या मसीही आराधना के मुद्दे नहीं हैं। शरीर का नियन्त्रण और सांसारिक रीतियों से बचाव मसीह के चेलों के लिए आवश्यक बातें हैं (रोमियों 12:1-3; 1 कुरिन्थियों 6:19, 20; 2 कुरिन्थियों 7:1)। पौलुस सदाचारी जीवन को निरुत्साहित नहीं कर रहा था। इसके बजाय वह

कुलुस्सियों को बता रहा था कि वे प्रथाएं जो दूसरे लोग उन पर थोपना चाहते थे, परमेश्वर के साथ उनके सम्बन्ध में उनका कोई काम नहीं था।

खाने-पीने परमेश्वर ने इस्राएलियों को खाने के नियम दिए थे। व्यवस्था में स्पष्ट बताया गया था कि इस्राएली क्या खा सकते हैं और क्या नहीं खा सकते (लैव्यव्यवस्था 11:1-47; व्यवस्थाविवरण 14:3-21)। यीशु ने खाने के इन नियमों से छुटकारा दिला दिया था: "क्या तुम नहीं समझते कि जो वस्तु बाहर से मनुष्य के भीतर जाती है, वह उसे अशुद्ध नहीं कर सकती? क्योंकि वह उसके मन में नहीं, परन्तु पेट में जाती है, और संडास में निकल जाती है? यह कहकर उस ने सब भोजन वस्तुओं को शुद्ध ठहराया" (मरकुस 7:18, 19; देखें प्रेरितों 10:10-16)।

पौलुस ने चेतावनी दी कि अन्त के दिनों में लोगों के विश्वास से फिर जाने के कारण कुछ विशेष भोजनों से दूर रहने की वकालत होनी थी, जो ऐसी पाबंदी है, जिसे मसीही लोगों को मानना आवश्यक नहीं था (1 तीमुथियुस 4:1-4)। रोमियों के नाम अपने संदेश में पौलुस ने लिखा कि मसीही लोगों को छूट दी गई है कि वे खाने के लिए कौन-सा भोजन चुनते हैं (रोमियों 14:5, 6, 13-15, 20, 21)। स्पष्टतया मसीही लोगों पर इस बात की पाबंदी नहीं है कि वे क्या खाएं या क्या पीएं। "परमेश्वर का राज्य खाना-पीना नहीं" (रोमियों 14:17)।

पीने से सम्बन्धित नियम के बारे में अधिक नहीं कहा गया है। याजकों के लिए धार्मिक सेवाओं में लगे होने पर दाखमधु या मद्य से दूर रहना आवश्यक था (लैव्यव्यवस्था 10:9)। नाज़ीरी मन्नत देने वालों के लिए दाखमधु, मदिरा, सिरका और दाख का कुछ भी रस पीने से दूर रहना आवश्यक था (गिनती 6:3)। मानोह की पत्नी को किसी भी प्रकार का दाखमधु या मदिरा न पीने को कहा गया था क्योंकि उसने एक पुत्र को, अर्थात शिमशोन को जन्म देना था (न्यायियों 13:4, 7, 14)। मदिरा में लगे रहने को मूलतया गलत कहा गया है (नीतिवचन 20:1; यशायाह 5:11; 28:1)।

पर्व। व्यवस्था में कई अवश्य मानने वाले पर्वों के नाम दिए गए हैं (व्यवस्थाविवरण 16:16; 2 इतिहास 8:13)।

(1) अखमीरी रोटी का पर्व (निर्गमन 23:15; 34:18; लैव्यव्यवस्था 23:6), जिसे फसह भी कहा जाता था (लैव्यव्यवस्था 23:5; व्यवस्थाविरण 16:1-6)। इस्राएलियों द्वारा परमेश्वर द्वारा उन्हें मिस्र की दासता में से निकालने को स्मरण करने के लिए मनाया जाना था (निर्गमन 12:24-27)। उन्हें याद रखना था कि परमेश्वर ने परिवार के पहिलौठे को नहीं मारा था, बल्कि इस्राएलियों के घरों के ऊपर से गुज़र गया था जिनके द्वारों और चौखट के सिरों और दोनों अलंगों पर लहू लगा हुआ था (निर्गमन 12:22, 23)। पर्व में अखमीरी रोटी का खाना भी शामिल था (निर्गमन 12:14-20; 13:6-8)।

(2) सप्ताहों का पर्व (निर्गमन 34:22; व्यवस्थाविवरण 16:10), इसलिए कहा जाता था क्योंकि इसे मनाने के लिए अनाज के पहली बार काटने के साथ सप्ताह गिनना आवश्यक होता था (व्यवस्थाविवरण 16:9), जिसे कटाई का पर्व या प्रथम फल और बटोरन का पर्व भी कहा जाता था (निर्गमन 23:16; 34:22; गिनती 28:26)। नये नियम में इसे "पिन्तेकुस्त" (प्रेरितों 2:1) कहा गया है, जिसका अर्थ "पचास का पर्व" है क्योंकि इसे फसह के पचास दिन बाद

मनाया जाता था (लैव्यव्यवस्था 23:15, 16)।

(3) झोंपड़ियों का पर्व (लैव्यव्यवस्था 23:34; एज्रा 3:4) को अन्य अनुवादों में डेरों के पर्व के रूप में माना गया है (KJV; NKJV)। इस्राएलियों को जंगल में ढूंढ़ने के चालीस वर्षों के दौरान झोंपड़ियों (तम्बुओं) में अपने रहने की याद में टहनियों से बनी झोंपड़ियों में रहना होता था। पर्व के पहले और आठवें दिन कोई काम नहीं किया जाना होता था (लैव्यव्यवस्था 23:39)।

(4) पुरीम का आरम्भ एस्तेर के यहूदी लोगों को विनाश से निकालने के बाद (एस्तेर 9:26-28), फारस के राजा क्षयर्ष के दिनों में आमान की दुष्ट चाल के बाद हुआ था।

यहूदियों के और विशेष दिन थे, जिन्हें उनके लिए मनाना आवश्यक था। सातवें महीने के पहले दिन इस्राएलियों को नरसिंगे फूंकना और होमबलि और अन्न बलियां चढ़ाना आवश्यक था (लैव्यव्यवस्था 23:23-25; गिनती 29:1-6)। प्रायश्चित के दिन (लैव्यव्यवस्था 16:3-34; 23:27-32) को आज योम किप्पुर कहा जाता है। यहूदियों का नया वर्ष जिसे बाद में रोश हशना कहा जाने लगा, बाबुल की दासता के दौरान ही मनाया जाना आरम्भ हुआ हो सकता है (यहेजकेल 45:18; देखें निर्गमन 12:2)। वर्ष के पहले दिन को निसान कहा जाता था (एस्तेर 3:7)।

नया चांद। इस्राएलियों का कैलेंडर चांद पर आधारित था; इस कारण नया चांद महीने के पहले दिन निकलता था, जब उन्हें परमेश्वर को भेंटें चढ़ानी होती थीं (गिनती 10:10; 28:11)। यह दिन उनके लिए नये चांद को मनाने का था (भजन संहिता 81:3; यशायाह 1:14; यहेजकेल 46:3; होशे 2:11; आमोस 8:5; शायद 1 शमूएल 20:18; 2 राजाओं 4:23 भी देखें)।

सब्त। इस्राएली लोग प्रत्येक सप्ताह के सातवें दिन, सप्ताह के पहले दिन से पहले साप्ताहिक सब्तों को मनाया करते थे (मत्ती 28:1; मरकुस 16:1, 2; लूका 23:56; 24:1; यूहन्ना 20:1)। "सब्त" का अर्थ "रुकना, परिश्रम बंद करना" है। सब्त के दिन कोई काम करने की अनुमति नहीं थी (निर्गमन 20:8-10; व्यवस्थाविवरण 5:12-15)। सब्त परमेश्वर और इस्राएल के लोगों अर्थात याकूब की संतान, जिसका नाम बदलकर इस्राएल कर दिया गया था (उत्पत्ति 35:10), एक वाचा थी (निर्गमन 31:14-16)। परमेश्वर ने इसे एक विशेष यादगारी के दिन के रूप में दे दिया, जब इस्राएलियों ने विश्राम करना था और याद रखना था कि परमेश्वर ने उन्हें मिस्र की दासता से छुड़ाया था (व्यवस्थाविवरण 5:12-15)। उसने इस दिन का चयन इसलिए किया क्योंकि सृष्टि की रचना के समय उसने सातवें दिन विश्राम किया था (निर्गमन 20:11)।

परमेश्वर ने सब्त का दिन सीनै पर दिया था (निर्गमन 20:8-10)। इस दिन काम करने वाले किसी भी व्यक्ति को मृत्यु दी जानी आवश्यक थी। यानी इस्राएलियों के लिए सब्त को पवित्र मानना आवश्यक था (निर्गमन 31:14)। परमेश्वर ने इसे विश्राम के दिन के रूप में अलग किया न कि आराधना के रूप में बाबुल की दासता के समय इस्राएलियों ने सब्त के दिन पवित्र शास्त्र को पढ़ने के लिए आराधनालयों में इकट्ठे होना आरम्भ कर दिया। तब भी यह आराधना का दिन नहीं था, बल्कि यह समय विश्राम, प्रार्थनाओं और पवित्र शास्त्र को पढ़ने का होता था (देखें प्रेरितों 15:21)।

साप्ताहिक सब्तों के अलावा इस्राएलियों को हर सातवें वर्ष सब्त का वर्ष मनाने की आज्ञा थी। उन्हें सब्त के वर्ष में अपने खेतों में हल नहीं चलाना था, बल्कि उन्हें विश्राम करने देना था

(निर्गमन 23:10, 11)।

आज्ञा न मानते हुए इस नियम को तोड़ने वालों को लोगों में से नष्ट कर दिया जाना था (गिनती 15:30, 31)। इसमें खाने-पीने, पर्वों, नये चांदों और सब्तों के विषय में व्यवस्था की बात को तोड़ना भी शामिल था। परन्तु व्यवस्था नई व्यवस्था के अधीन लोगों पर लागू नहीं होती थी। इस कारण मसीही लोगों का आस्था की विधियों को लागू करवाने की इच्छा से मसीह में मिली स्तन्त्रता को छीनकर न्याय न किया जाए (मत्ती 7:1) या वे किसी को अपना न्याय न करने दें।

सब्त के दिन को मानने की आज्ञा नये नियम में मसीही लोगों को नहीं दी गई। यह महत्वपूर्ण है, क्योंकि अन्यजाति मसीही लोगों को कई निर्देश दिए गए थे जिनमें से किसी में भी उनके लिए सब्त के दिन के विश्राम का कोई संकेत नहीं था। सब्त के दिन काम न करने की रीति से वे परिचित नहीं थे, इस कारण उन्हें यदि इसे मानने के लिए कहा जाना होता तो सब्त के विषय में उन्हें विशेष निर्देश दिए गए होते। पहली वाचा को हटाने और उसके स्थान पर नई वाचा देने पर (इब्रानियों 8:13; 10:9), सब्त को मानने की आज्ञा को भी हटा दिया गया था।

आयत 16 से पता चलता है कि कुलुस्सियों को सब्त का दिन विश्राम के विशेष दिन में मानने की आवश्यकता नहीं थी। अन्यजाति मसीही लोगों के लिए इस दिन का कोई विशेष महत्व नहीं था। रविवार अर्थात प्रभु का दिन ही वह दिन है, जिस दिन मसीह ने जी उठकर मृत्यु पर विजय पाई थी। मृत्यु पर उसकी विजय का यह दिन ही वह दिन है, जब मसीही लोग उसे याद करने के लिए प्रभु-भोज करते हैं (प्रेरितों 20:7)।

''ये सब आने वाली बातों की छाया हैं, पर मूल वस्तुएं मसीह की हैं'' (2:17)

आयत 16 में पौलुस ने जिन रीतियों की बात की, उनका उद्धार या धार्मिकता के साथ कोई लेना-देना नहीं था। भोजन के नियम या विशेष दिन को मनाने से कुलुस्से के लोगों से आत्मिक जीवनों में सुधार कैसे हो सकता था? यह सब वास्तविक भोजन अर्थात मसीह में जीवन की केवल छाया थे (यूहन्ना 6:48)। नई वाचा ने व्यवस्था की तुलना में कई सुधार किए थे। कोशर भोजनों से बढ़कर आत्मिक शुद्धता का (2 कुरिन्थियों 7:1) अधिक महत्व था। यीशु का बलिदान पाप से शुद्ध कर सकता है (मत्ती 26:28) जबकि व्यवस्था के बलिदान नहीं कर सकते थे (इब्रानियों 10:4)। स्वर्ग का अनन्त विश्राम जिसकी प्रतिज्ञा मसीही लोगों को दी गई है (इब्रानियों 4:9; 1 पतरस 1:3, 4)। सब्त के विश्राम से उत्तम है। यीशु मूसा से बड़ा व्यवस्था का देने वाला है और व्यवस्था के द्वारा दिए गए याजकों से श्रेष्ठ है (इब्रानियों 3:3; 7:28)।

वास्तविकता की आंशिक समानता को दिखाते हुए डाली जाने वाली **छाया** के लिए *skia* शब्द इस्तेमाल किया गया है। इसका अर्थ किसी और चीज़ का प्रतिनिधित्व या नकल मात्र है। नई वाचा में यीशु ने उन सच्चाइयों को बताया, जो व्यवस्था में जिनकी परछाईं (इब्रानियों 10:1-4) उन चीज़ों के द्वारा दी गई थी। जिनकी अपने आप में कोई स्वाभाविक कीमत या शक्ति नहीं। उदाहरण के लिए जानवरों के बलिदान मसीह में पाए जाने वाली वास्तविकता की परछाईं थे (इब्रानियों 8:5; 10:1-3)।

जिस प्रकार परछाईं अपने आप में वास्तविकता नहीं होती, केवल छाया होती है, वैसे ही

व्यवस्था की बातें इस्राएल की वास्तविकता की परछाईं ही थीं। यीशु ने सत्य अर्थात वास्तविकता दी जबकि मूसा ने व्यवस्था (यूहन्ना 1:17), परछाईं (इब्रानियों 10:1) दी। व्यवस्था नई वाचा की वास्तविकताओं की परछाईं थी। परन्तु यह उन सम्पूर्ण सच्चाइयों को नहीं दिखा सकी जैसे यीशु ने बाद में दिखाई (इब्रानियों 8:5)। व्यवस्था के आधार पर अपनी रीतियों के लिए मसीही लोगों का न्याय करने वाले लोग उन लोगों की तरह हैं, जो किसी व्यक्ति का न्याय उसकी परछाईं के आधार पर करेंगे। "वास्तविकता यहां है, इस कारण छाया की चीज़ों में न्याय के लिए कोई पैमाना नहीं रहा।"[1]

आने वाली बातों को भविष्य में होने वाली बातों को नहीं कहा गया है। "आने वाली" बातों की छाया उस बात की छाया थी जिसे यीशु ने नई वाचा में बताया (इब्रानियों 8:5)।

"पर मूल वस्तुएं मसीह की हैं" (2:17)

अनुवादित शब्द **मूल वस्तुएं** *sōma* है, जिसका अर्थ आमतौर पर "शरीर" होता है। ऐसा शरीर कोई व्यक्ति (मत्ती 5:29), पशु (याकूब 3:3), पौधे (1 कुरिन्थियों 15:37) या लोगों का समूह जैसे कलीसिया (रोमियों 12:5; कुलुस्सियों 1:18)। हो सकता है। यह एक समस्या को दिखाता है। *sōma tou Christou* ("मसीह का शरीर") वाक्यांश का इस्तेमाल करते हुए क्या पौलुस (1) यीशु की शारीरिक देह (मत्ती 26:12) (2) कलीसिया या (3) वास्तविकता या मूल वस्तुओं की बात कर रहा था, जिससे परछाईं का पता चलता है? KJV में केवल एक को छोड़कर जहां इसका अनुवाद "शारीरिक" हुआ है (2 कुरिन्थियों 10:10) *sōma* का अनुवाद "देह या देहें" हुआ है।[2]

इन तीनों में से कोई भी व्याख्या सम्भव हो सकती है, पर यहां सबसे बेहतर व्याख्या लगती है कि व्यवस्था नई वाचा की छाया थी। किसी के लिए आयत 16 में "खाने-पीने, नये चांद या सब्त" को क्या करना कठिन होगा कि वे यीशु की शारीरिक देह की छाया हैं या कलीसिया की। आयत 16 में मनाई जाने वाली बातों की आसान व्याख्या नई वाचा में बताए गए नियमों की परछाईं के रूप में अधिक आसानी से की जा सकती है। शारीरिक रीतियों के रूप में उन में नई वाचा की आत्मिक वास्तविकताओं को दिखाया गया। व्यवस्था में खाए जा सकने वाले शारीरिक भोजनों पर पाबंदी थी जबकि नई वाचा का ध्यान मसीही लोगों के लिए आत्मिक भोजन पर है (1 पतरस 2:2)। जानवरों के बलिदानों के द्वारा पर्वों का मनाया जाना क्रूस पर यीशु की मृत्यु अर्थात वास्तविक बलिदान की साप्ताहिक मनाए जाने की पूर्व छाया थे (1 कुरिन्थियों 11:23-25)। पवित्र शास्त्र व्यवस्था के कई रूपों और मसीही रीतियों में उनकी तुलनात्मक वास्तविकताओं की व्याख्या करता है।

झूठे शिक्षकों ने यीशु द्वारा जो सत्य का देने वाला है, प्रकट की गई सच्चाई के बजाय केवल छाया को देखकर अपनी दृष्टि को सीमित कर लिया था (इफिसियों 4:21)। छाया का उद्देश्य वास्तविकता को तैयार करना था (गलातियों 3:24)। व्यवस्था के अधीन रहने वाले लोग अभी भी अंधकार में थे यानी उनकी आंखों पर अभी भी पर्दा पड़ा हुआ था (2 कुरिन्थियों 3:14), और वे जगत की ज्योति को नहीं देख पाए (यूहन्ना 8:12) जिसकी छाया व्यवस्था के द्वारा दी गई है।

मसीही लोग छाया में नहीं बल्कि परिपूर्णता और वास्तविकता के युग में रहते हैं। व्यवस्था

आज भी मसीही युग की अप्रभावकारी छाया का काम करती है। व्यवस्था की मद्धम रूपरेखा से चलने की चाह रखने वाले लोग मसीही जीवन और स्वर्ग के अनन्त जीवन की विस्तृत सुन्दरता से चूक जाते हैं।

मनुष्यों की रीतियों से दूर रहना (2:18, 19)

[18]कोई मनुष्य दीनता और स्वर्गदूतों की पूजा करके तुम्हें दौड़ के प्रतिफल से वंचित न करे। ऐसा मनुष्य देखी हुई बातों में लगा रहता है और अपनी शारीरिक समझ पर व्यर्थ फूलता है। [19]और उस शिरोमणि को पकड़े नहीं रहता जिस से सारी देह जोड़ों और पट्ठों के द्वारा पालन-पोषण पाकर और एक साथ गठकर, परमेश्वर की ओर से बढ़ती जाती है।

''कोई मनुष्य तुम्हें प्रतिफल से वंचित न करे'' (2:18)

पौलुस ने कुलुस्सियों को उन से जो उन्हें ''लुभाने'' (2:4) ''अहेर'' करने (2:8) और ''[उन का] फैसला'' करने की कोशिश को (2:16) से सावधान रहने को कहा। फिर उसने कहा, **कोई तुम्हें वंचित न करे ...** यह बात निरन्तर क्रिया की आज्ञा है। प्रेरित भाइयों को झूठी शिक्षा को उन्हें यीशु द्वारा दिए गए लाभों से वंचित करने न देने के लिए भाइयों को आज्ञा दे रहा था।

कुलुस्से के लोगों को यीशु द्वारा दी गई वास्तविकताओं से फुसलाकर झूठे शिक्षकों ने उन्हें उनके **प्रतिफल** से ''वंचित'' कर देना था। नये नियम में ''वंचित'' (*katabrabeuō*) शब्द केवल यहीं मिलता है, इसलिए इस क्रिया शब्द का सामान्य इस्तेमाल उस काल के अन्य साहित्य में भी होगा। नकारात्मक अर्थ में अम्पायर द्वारा किसी को इनाम पाने से निकालने की तरह ''के विरुद्ध फैसला करना'' था। पौलुस यूनानी खेलों की ओर संकेत कर रहा हो सकता है। कोई धावक रेस जीतकर केवल पक्षपाती जज के द्वारा ही अयोग्य ठहराया जा सकता है या वह जीतने का प्रयास कर सकता है। परन्तु बाद में उसे पता चलता है कि वह कानूनी तौर पर प्रतिस्पर्धा के रूप में नहीं था। दोनों ही बातों में वह इनाम नहीं पा सकता।

पौलुस ने भाइयों को सावधान किया कि वे बनावटी विनम्रता से यीशु से दूर न हो जाएं। यदि वे यीशु की आराधना छोड़कर स्वर्गदूतों की आराधना करने लगते तो उन्होंने अपने प्रतिफल को खो देना था। इस ''प्रतिफल'' में उद्धार, स्वर्ग में अनन्त जीवन और मसीह में मिलने वाला आत्मिक जीवन होना था। ''कोई तुम्हें वंचित करे'' आयत 16 जैसी अभिव्यक्ति ही है। पौलुस नहीं चाहता था, कि कुलुस्से के लोग यीशु से किसी भी और व्यक्ति *के द्वारा* या किसी भी और व्यक्ति *की ओर* मुड़ जाएं। उन्हें पहले ही वास्तविकता और सच्चाई मिल चुकी थी, इसलिए अब उन्हें झूठे शिक्षकों के पीछे नहीं चलना चाहिए या वास्तविकता की अप्रभावी छाया से भटकना नहीं चाहिए। यदि वे इसे मानते तो उन्होंने सच्चाई की जगह झूठ को, मूल वस्तुओं की जगह छाया को दे देनी थी। इस प्रकार उन्होंने वास्तविकता से वंचित हो जाना था।

पौलुस के निर्देश से संकेत मिलता है कि सब लोगों की स्वतन्त्र इच्छा है, और वे परमेश्वर के हाथ की कठपुतलियां नहीं हैं, नहीं तो उसकी चेतावनी बेकार होनी थी। अपने प्रतिफल से

वंचित न होने की उन्हें दी गई चेतावनी से उसने दिखाया कि उनके पास एक पसन्द है। वे झूठी शिक्षा देने वालों को उन्हें प्रभावित करने की अनुमति दे सकते थे या वे प्रभावित होने से इनकार कर सकते थे।

पौलुस द्वारा उन्हें यीशु से अन्य शिक्षा या रीतियों में जाने से रोकने की चेतावनी के लिए छह नकारात्मक अभिव्यक्तियों का इस्तेमाल किया गया। उनमें से चार तो 2:18, 19 में दी गई हैं और फिर उसने ''काम में लाते-लाते नष्ट'' हो जाने वाली (2:22) और ''शारीरिक लालसाओं को रोकने में इन से कुछ भी लाभ नहीं होता'' की बात की (2:23)।

सकारात्मक पक्ष में कई अभिव्यक्ति के साथ पौलुस ने भाइयों को यीशु के पीछे चलने और उसके वफ़ादार रहने को प्रोत्साहित किया:

- ''उस ने हमें अंधकार के वश से छुड़ाया'' (1:13)।
- ''वह तो अदृश्य परमेश्वर का प्रतिरूप ... है'' (1:15)।
- वह ''सारी सृष्टि में पहलौठा है'' (1:15)।
- ''उसी में सारी वस्तुओं की सृष्टि हुई'' (1:16)।
- ''वही सब वस्तुओं में प्रथम है'' (1:17)।
- ''सब वस्तुएं उसी में स्थिर रहती हैं'' (1:17)।
- ''वही देह ... का सिर है'' (1:18)।
- ''वही आदि है, और मरे हुओं में से जी उठने वालों में पहलौठा'' (1:18)।
- ''सब बातों में वही प्रधान'' ठहरेगा (1:18)।
- ''उसमें सारी परिपूर्णता वास [करती है]'' (1:19)।
- ''उसने तुम्हारे साथ मेल-मिलाप कर लिया है'' (1:20)।
- ''जिसमें बुद्धि और ज्ञान के सारे भण्डार छिपे हुए हैं'' (2:3)।
- ''उसमें ईश्वरत्व की सारी परिपूर्णता सदैव वास करती है'' (2:9)।
- ''तुम उसी में भरपूर हो गए हो'' (2:10)।
- ''उसी में तुम्हारा खतना हुआ है'' (2:11)।
- ''विधियों का वह लेख ... मिटा डाला और उसे क्रूस पर कीलों से जड़कर सामने से हटा दिया है'' (2:14)।
- ''उसने प्रधानताओं और अधिकारों को उतार'' दिया है (2:15)।
- ''तुम मसीह के साथ मर गए हो'' (2:20)।

''आत्महीनता और स्वर्गदूतों की पूजा करके'' (2:18)

सम्भावित धोखा देने वाले कुलुस्सियों को **आत्महीनता और स्वर्गदूतों की पूजा कराके** यीशु से दूर कर सकते थे। अनुवादित शब्द ''कराके'' के *thelō* सामान्य अर्थ ''इच्छा करना, ख्वाहिश करना, चाहना है'' (देखें मत्ती 1:19; 8:2)। यहां पर यूनानी उपसर्ग *en* (''में'') के साथ इस्तेमाल करने पर इसका अर्थ ''में आनन्दित होना,''[3] या ''में आनन्द करना'' समझा जाता है। इन धोखा देने वालों की बनावटी, दीन भक्ति थी। उन्हें दूसरों के सामने अपने आपको

प्रताड़ित करने में आनन्द मिलता था।

इस बात पर ज़ोर देने के लिए कि कुलुस्से के लोग ऐसी रीतियों में आकर्षित होने से बचें पौलुस ने अगले वाक्यांशों में चार यूनानी कृदंतों का इस्तेमाल किया: "आत्महीनता और स्वर्गदूतों की पूजा *कराके*" (आयत 18); (2) "ऐसा मनुष्य देखी हुई बातों में *लगा रहता है*" (आयत 18); (3) "अपनी शारीरिक समझ पर व्यर्थ *फूलता है*" (आयत 18); और (4) "उस शिरोमणि को *पकड़े* नहीं *रहता*" है (आयत 19)।

Tapeinophrosunē का अनुवाद यहां और आयत 23 में "आत्महीनता" हुआ है, आम तौर पर इसका अनुवाद "दीनता" किया जाता है (प्रेरितों 20:19; इफिसियों 4:2; फिलिप्पियों 2:3)। नये नियम के अन्य लेखकों ने परमेश्वर के सामने दीन होने का महत्व समझाया (याकूब 4:10; 1 पतरस 5:5, 6)। परन्तु यहां पर "दीनता" का नकारात्मक अर्थ देते हुए इस शब्द को "स्वर्गदूतों की पूजा" से जोड़ा गया है। पौलुस बनावटी दीनता की बात कर रहा था, जो कि कपट है ("छद्म दीनता"; NIV)। यीशु इसी समस्या की बात कर रहा हो सकता है, जब उसने उन लोगों के विरुद्ध कहा, जो दूसरों को दिखाने के लिए ज़रूरमंदों को देते, प्रार्थना करते और उपवास रखते थे (मत्ती 6:1-7, 16-18; देखें 23:25-28)। दिखावटी धार्मिकता या दीनता वास्तव में धार्मिकता या दीनता है ही नहीं।

लगभग हर धार्मिक समूह में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अपनी भक्ति पर घमण्ड करते हैं, जिसे वे दिखावटी दीनता के साथ दिखाते हैं। इन लोगों को यह लग सकता है कि उन्होंने असामान्य धार्मिक अनुभवों या आत्मिक दानों के द्वारा पवित्रता का एक उच्च स्तर पा लिया है। वे यह सोचकर कि उन्हें ऐसे अनुभवों से विशेष अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो गया है, अपने आप में घमण्ड से फूलते हैं। इस दिखावे के अन्दर देख न पाने वाले लोग झूठी दीनता के दिखावे से यीशु से दूर हो सकते हैं।

जो लोग बाहरी दिखावे के लिए अपनी शकलें बिगाड़ते, शारीरिक हाव-भावों का दिखावटी इस्तेमाल करते, रंग-बिरंगी आवाज़ें निकालते या अन्य असामान्य शारीरिक अभिव्यक्तियों का इस्तेमाल करते हैं, वे परमेश्वर को नहीं, बल्कि मनुष्यों को प्रभावित करने की तलाश में हैं। ऐसा स्वांग केवल भक्ति का घमण्डपूर्ण दिखावा यानी दूसरों को दिखाने के लिए एक प्रदर्शन है कि वे कितने धार्मिक हैं या वे पूजा में कितने मस्त हैं।

पौलुस ने "स्वर्गदूतों की पूजा" करने के विरुद्ध चेतावनी भी दी। न केवल पूजा का ढंग ही गलत हो सकता है बल्कि पूजा किसकी की जाती है, यह भी गलत हो सकता है। मसीही लोग परमेश्वर को छोड़ किसी भी अन्य की आराधना करके अपने प्रतिफल से वंचित हो सकते हैं। पतमुस के टापू पर यूहन्ना उस स्वर्गदूत की उपासना करने लगा था, जो उस पर यीशु मसीह का प्रकाशन बता रहा था। स्वर्गदूत ने उसे उसकी उपासना करने से मना किया और उसे परमेश्वर की उपासना करने को कहा (प्रकाशितवाक्य 19:10; 22:8, 9)। आराधना केवल परमेश्वर की ही होनी चाहिए (व्यवस्थाविवरण 6:13; मत्ती 4:10)।

यीशु ने अपनी आराधना किए जाने की अनुमति दी[4]-और ऐसा करना सही भी है क्योंकि वह परमेश्वर है (मत्ती 1:23; यूहन्ना 1:1)। उसने मरियम की उपासना और आराधना की स्थिति तक ऊंचा किए जाने के योग्य नहीं माना। एक अवसर पर भीड़ में एक स्त्री ने यह कहते हुए कि

मरियम की कोख और छातियां धन्य हैं, क्योंकि उन्होंने यीशु को पाला और बड़ा किया, मरियम का सम्मान करने की कोशिश की। यीशु ने उत्तर दिया, "परन्तु धन्य वे हैं, जो परमेश्वर का वचन सुनते और मानते हैं" (लूका 11:27, 28; देखें मत्ती 12:48-50)।

कुछ लोगों ने सुझाव दिया है कि 2:18 में पौलुस स्वर्गदूतों द्वारा की जाने वाली आराधना की बात कर रहा था। इसका अर्थ यह होगा कि झूठे शिक्षक अपनी आराधना को वैसा बनाने की तलाश में थे, जैसा उन्हें लगता था कि स्वर्गदूत आराधना करते हैं। इस व्याख्या में दिक्कत यह है कि किसी को यह मालूम नहीं है कि स्वर्गदूत कैसे आराधना करते हैं। इसके अलावा किसी भी उपलब्ध जानकारी से इस विचार को समर्थन नहीं मिलता है कि लोग अपनी आराधना में स्वर्गदूतों का अनुकरण करने की कोशिश कर रहे थे।

कुलुस्से के लोग हो सकता है कि स्वर्गदूतों की पूजा न कर रहे हों, चाहे लिकुस तराई में स्वर्गदूतों की पूजा की जा रही थी। पूरे एशिया माइनर में काफ़ी भ्रमण करने वाले इरेनियुस ने ईस्वी 182 और 188 के बीच लिखा कि कलीसिया स्वर्गदूतों की विधियों को नहीं मानती थी।[5] बाद में सिनड़ ऑफ़ लौदीकिया, कैनन XXXV (ईस्वी 363) में कहा गया कि कलीसिया को स्वर्गदूतों से विनती करने का कोई अधिकार नहीं है।[6] एशिया माइनर में पाए जाने वाले शिलालेखों के अनुसार महादूत मिकाईल की पूजा उस इलाके में 739 ईस्वी तक दूर-दूर तक की जाती थी जब सराकीनों पर विजय को मीकायल के नाम समर्पित किया गया। अधिक सम्भावित निष्कर्ष यही है कि पौलुस कुलुस्सियों को स्वर्गदूतों की पूजा आरम्भ न करने की चेतावनी देने के लिए लिख रहा था।

यहां पर "पूजा" (*thrēskeia*) का अर्थ "अलौकिक जीवों के प्रति समर्पण की अभिव्यक्ति, [विशेषकर] जैसा यह अपने आपको धार्मिक पद्धतियों में व्यक्त करती है" है।[7] यही शब्द पौलुस के लेखों के साथ समकालीन साहित्य में मिलता है। नये नियम में केवल एक और जगह जहां यह शब्द मिलता है, इसका अनुवाद आराधना (प्रेरितों 26:5) और परमेश्वर की, की जाने वाली सेवा (याकूब 1:26, 27) के लिए यहूदी परम्पराओं के सम्बन्ध में इसका अनुवाद "पंथ" हुआ है। इसका अर्थ धार्मिक पद्धतियों के मनाए जाने में सांसारिक रीतियां भी हो सकता है। पौलुस ने कुलुस्सियों को अन्यजातियों की रीतियों में लगाकर स्वर्गदूतों को विशेष आदर न देने की चेतावनी दी। अन्य ऐसी बातों में लग सकते हैं; परन्तु भीड़ के पीछे चलने के बजाय कुलुस्सियों को यीशु के वफ़ादार बने रहना आवश्यक था।

न केवल मसीही आराधना सही व्यक्ति यानी परमेश्वर की होनी आवश्यक है, बल्कि उन्हें उस सत्य के अनुसार जो यीशु के द्वारा प्रकट किया गया है, आराधना भी करना आवश्यक है (यूहन्ना 1:17; 4:23, 24; 8:31, 32)। स्वर्गदूतों की पूजा जिसकी पौलुस ने निंदा की, में आराधना के इन दोनों पहलुओं में से कोई नहीं था।

"ऐसा मनुष्य देखी हुई बातों में लगा रहता है" (2:18)

अगली चेतावनी किसी भी शिक्षक के सम्बन्ध में है, जो **देखी हुई बातों में लगा रहता है।**

इस वाक्यांश का सही-सही अर्थ पता नहीं है। इसका अनुवाद "उन बातों में घुसना, जो उसने देखी नहीं हैं" (KJV; देखें NKJV);[8] "उन बातों में रहना जो उसने देखी हैं" (ASV), "दर्शनों पर अपनी बात मनवाना" (RSV); "दर्शनों पर निर्भर रहना" (NRSV); "जो उसने देखा है उस पर बड़े विस्तार में जाना" (NIV; देखें TNIV); "अपने ही किसी दर्शन में जाने की कोशिश करना" (NEB); और "किसी काल्पनिक संसार में पहुंच ... के लिए जाना" (REB) किया गया है। अधिकतर अनुवादक "दर्शनों पर अपनी बात मनवाना" जैसे वाक्यांशों के पक्षों में लगते हैं।

अनुवादित शब्द "लगा रहता है" (*embateuō*) नये नियम में केवल यहीं पर लगता है, जिसका अर्थ "में प्रवेश करना" है। इस शब्द पर बाउर ने ये टिप्पणियां की हैं: "... ध्यान से जांच करना, ध्यान से जांच करने के लिए किसी [विषय] में जाना, *विस्तार में जाना* ..., इस प्रकार कुलुस्सियों 2:18 में [सम्भवतया] किसी दर्शन में *जो कुछ उसने देखा है उसके पीछे दूर तक जाना* ... और इस प्रकार स्वर्गीय दूतों के लिए अपनाए जाने वाले ढंग को उचित ठहराना।"[9]

विलियम एम. रैमसे ने दूसरी शताब्दी की कलारूस के अपोलो के मन्दिर पर एक शिलालेख पाया।[10] इसमें यूनानी शब्द *embateuō* था, जिसका इस्तेमाल रहस्यमय धर्मों के धार्मिक अनुभव में जाने के सम्बन्ध में किया जाता था। यदि आयत 18 में इसका अर्थ यह है तो पौलुस धार्मिक अनुभवों से मिले दर्शनों से गुमराह होने के प्रति चौकस कर रहा था। यह उन आधुनिक माध्यमों के विरुद्ध भी एक चेतावनी होनी थी, जो परामर्शदाताओं के रूप में काम करते हैं, वे लोग जो मुर्दों से बात करने का दावा करते हैं या जिन्हें भविष्य की घटनाओं का ज्ञान होने की बात कही जाती है।

शेष प्रश्न हैं "यह दर्शन कैसे मिले थे?" और "किन्हें मिले थे?" पौलुस ने शायद "देखी हुई बातों" की बात पिछले वाक्यांश "स्वर्गदूतों की पूजा" के सम्बन्ध में की। यदि ऐसा है तो वह कुलुस्सियों को उन दर्शनों में यकीन करने के विरुद्ध चेतावनी दे रहा था जिन्हें धोखा देने वालों का दावा था कि वे उन्हें स्वर्गदूतों जैसे स्वर्गीय जीवों से मिले हैं। यह धोखा देने वाले इन दर्शनों के कारण अपने आपको आत्मिक रूप में श्रेष्ठ मानते थे। परन्तु वे इन भावनाओं को दिखावटी दीनता से छुपा लेते थे। उनका मानना था कि ऐसी दीनता से उन्हें दूसरों से वाह-वाही मिलेगी, जो उन्हें बड़े धार्मिक लोगों के रूप में देखते हैं।

ऐसे दर्शनों को वे न केवल दूसरों की नज़रों में ऊंचा होने के लिए बल्कि अपनी शिक्षा को मान्यता दिलाने के लिए भी मनाते थे। दूसरों को यह प्रभाव देकर कि उनके संदेश स्वर्ग की ओर से दिए गए हैं, वे श्रेष्ठ होने, अधिकारात्मक ज्ञान होने का दावा करते थे। वे घमण्ड से फूलते थे क्योंकि उन्हें लगता था कि उनके दर्शनों से उन्हें वह ज्ञान मिला है, जो स्वर्गीय भेदों के सम्बन्ध में दूसरों के पास नहीं है।

झूठे दर्शन कोई नई बात नहीं थे। यिर्मयाह ने झूठे भविष्यद्वक्ताओं के सम्बन्ध में परमेश्वर की इस बात को लिखा था: "मैं ने इन भविष्यवक्ताओं की बातें भी सुनीं हैं, जो मेरे नाम से यह कहकर झूठी भविष्यवाणी करते हैं कि मैं ने स्वप्न देखा है, स्वप्न!" (यिर्मयाह 23:25)। वे कुछ देखने का दावा करते थे जबकि वास्तव में उन्होंने कुछ नहीं देखा था।

पौलुस का स्वर्गीय दर्शन इन दर्शनों से अलग था। उसे तीसरे स्वर्ग में उठा लिया गया था

और उसने वे "अकथनीय बातें" सुनी थीं, जिन्हें वह दूसरों के साथ साझा नहीं कर सकता था। पौलुस को इतने अधिक प्रकाशन मिले थे कि उसे शैतान की ओर से शरीर में एक कांटा भी दिया गया था ताकि वह अपने अनुभवों से अधिक फूल न जाए (2 कुरिन्थियों 12:1-7)। परमेश्वर के दूत का मन उसके द्वारा परमेश्वर के काम करने के कारण फूल जाने के बजाय दीनता से भर जाना चाहिए।

एक प्रश्न जिसका उत्तर आसान नहीं है, वह यह है कि क्या इन झूठे शिक्षकों ने सचमुच में कुछ देखा था, क्या उन्हें भ्रम हुआ था या वे दर्शन देखने की बात का झूठ बोल रहे थे, जबकि उन्होंने देखे नहीं थे? यदि उन्होंने दर्शन देखे थे तो जो कुछ उन्होंने देखा था उसके सम्बन्ध में उनकी बात सच हो सकती थी। परन्तु उनकी प्रासंगिकता परमेश्वर की ओर से प्रकाशन होने को नहीं दिखाती थी। यिर्मयाह ने झूठे भविष्यद्वक्ताओं के सम्बन्ध में जो अपने स्वप्नों को बताते थे, यह कहते हुए लिखा कि ये लोग "अपने मन ही के छल" को बताते थे (यिर्मयाह 23:25, 26)।

यदि ये भ्रम अर्थात वास्तविकता का बोध मनवाने वाले झूठे अनुभव हैं तो ये उन लोगों को जिन्होंने इन्हें देखा था सच लगने थे, परन्तु इन में परमेश्वर की सच्चाई नहीं होनी थी। यदि यह लोग दर्शन होने के बारे में झूठ बोल रहे थे तो स्पष्टतया उन्होंने उन्हें अपने आपको ऊंचा करने और अपने पीछे चलने वालों का ध्यान खींचने के लिए परमेश्वर की ओर से सच्चे संदेश के रूप में वर्णन कर रहे थे। यह सच हो या न पर काल्पनिक दर्शन परमेश्वर की ओर से नहीं दिए गए थे। इन शिक्षाओं का देने वाला परमेश्वर नहीं था और कुलुस्सियों को उन से गुमराह होने की आवश्यकता नहीं थी।

बाद की सदियों में अपने काल्पनिक दर्शनों पर आधारित कुछ लोगों ने नए धर्मों की स्थापना की: मुहम्मद; जोसेफस समिथ, मॉरमन धर्म का संस्थापक, एलन जी. वाइट जिसने सैवंथ डे एडवेंटिज़्म की स्थापना की और अन्य लोग। उनके कुछ दर्शनों में उनके साथ परमेश्वर, यीशु या स्वर्गदूतों के बात करने की बात बताई जाती है। यीशु के वास्तविक दर्शन अब नहीं होते हैं, क्योंकि पौलुस ने कुरिन्थियों को आश्वस्त किया कि उसे "सब के बाद" दिखाई दिया था[11] (1 कुरिन्थियों 15:8)। यह तब तक दोबारा नहीं होगा जब तक अन्त के दिन में वह वापस नहीं आता।

भविष्य बताने वाले और कुछ तांत्रिक दर्शन पाने का दावा करते हैं। मसीही लोगों को हर शिक्षा को नये नियम के लेखों में पाई जाने वाली सच्चाई से परखना आवश्यक है (देखें 1 यूहन्ना 4:1, 6)। ऐसा करके हम कथित दर्शनों और प्रकाशनों से भ्रमित होने से बच जाएंगे। हमें पता चल जाएगा कि कोई शिक्षक सच्चाई बता रहा है या झूठी शिक्षा दे रहा है।

"अपनी शारीरिक समझ पर व्यर्थ फूलता है" (2:18)

कुछ झूठे शिक्षकों ने जहां दीनता का दिखावा बनाया, वहीं दूसरे अहंकार से भरकर **फूलते** (*phusioō*) थे। वर्तमान कृदंत यूनानी क्रिया घमण्ड की आदतन भावना वाली निरन्तर स्थिति को दिखाता है। घमण्ड से इतना घिरे लोगों के पास अपने बारे में ऐसे उच्च विचार का कोई कारण नहीं था। कहीं और पौलुस ने "फूलता" या "गर्व से भरा" शब्द कुरिन्थियों को लिखते हुए इस्तेमाल किया (देखें 1 कुरिन्थियों 4:6, 18, 19; 5:2; 8:1; 13:4.), उसने उन्हें बताया,

"ज्ञान घमण्ड उत्पन्न करता है और [*phusioi,* घमण्ड से फुलाता है], परन्तु प्रेम से उन्नति होती है" (1 कुरिन्थियों 8:1)।

दर्शन देखने का दावा करने वालों को अवांछित आदर और प्रतिष्ठा दी जाती है जिससे उनकी शिक्षा को यीशु की शिक्षा से बढ़कर स्वीकार किया जाता था। पौलुस ने एक चेतावनी दी क्योंकि उसे यह चिन्ता थी कि यीशु को पीछे करके लोग झूठे शिक्षकों के पीछे चल पड़ेंगे। कुलुस्सियों को सम्पन्न करने के बजाय इन दर्शनों ने उन्हें कंगाल कर देना था। झूठे शिक्षकों ने उन्हीं डुबकी और ज्ञान के वास्तविक स्रोत से (2:3) मानवीय आविष्कार के व्यर्थ विचारों की ओर ले जाना था। उन्हें हानि होनी थी क्योंकि वास्तविक आत्मिक विकास मनुष्य के दिमाग से बने तरीकों से नहीं बल्कि यीशु से मिलता है (यिर्मयाह 10:23)।

इस आयत में अन्तर स्पष्ट है। पौलुस उन लोगों के विरुद्ध चेतावनी दे रहा था जो आत्महीनता के बाहरी दिखावे को दिखा रहे थे पर अन्दर से वे घमण्ड से फूले हुए थे। उनके फूले हुए मनों को ऐसे घमण्ड करने का कोई कारण नहीं था, क्योंकि वे गलत दर्शनों पर भरोसा कर रहे थे। इन से उन्हें बिना आधार वाली आत्मप्रतिष्ठा तो मिली और उन्हें गलत ढंग से घमण्ड करने का कारण बनी।

दूसरी ओर मसीही लोग उसमें जो उन्होंने यीशु के द्वारा प्राप्त किया है, भरोसा कर सकते हैं। पौलुस ने लिखा:

> क्योंकि हम अपने विवेक की इस गवाही पर घमण्ड करते हैं, कि जगत में और विशेष करके तुम्हारे बीच, हमारा चरित्र परमेश्वर के योग्य ऐसी पवित्रता और सच्चाई सहित था, जो शारीरिक ज्ञान से नहीं, परन्तु परमेश्वर के अनुग्रह के साथ था (2 कुरिन्थियों 1:12)।

मसीही लोगों को यीशु और उस जीवन के लिए जो उसने अपने अनुयायियों के लिए सम्भव बनाया है, गर्व करना चाहिए न कि लज्जित होना चाहिए। ऐसा घमण्ड करना सही है क्योंकि यह यीशु के काम और परमेश्वर के अनुग्रह में है, न कि किसी की अपनी प्राप्तियों और योग्यताओं में मसीह के चेले को चेतावनी है कि "जैसा समझना चाहिए, उस से बढ़कर कोई भी अपने आप को न समझे" (रोमियों 12:3)।

आत्मिक सोच वाले मसीही लोगों को बिना आधार के घमण्ड से मुक्त होना चाहिए जो कि सांसारिक सोच वाले लोगों की विशेषता है। एडुअर्ड शवेज़र ने सही टिप्पणी की है कि बुरा शरीर नहीं है।[12] मानवीय शरीर अपने आप में न तो भला है और न ही बुरा। पौलुस कुलुस्से के लोगों की जो बड़ी दिलेरी से केवल मानवीय बुद्धि पर भरोसा कर रहे थे और परमेश्वर के प्रकाशन पर नहीं, की समस्या की बात कर रहा था। कुरिन्थियों के नाम अपने पत्र में उसने परमेश्वर के मन की समझ पाने में मानवीय बुद्धि की व्यर्थता की ओर ध्यान दिलाया (1 कुरिन्थियों 1:20, 21)। परमेश्वर के मन को केवल उसकी ओर से मिले विशेष प्रकाशन के द्वारा ही जाना जा सकता है (1 कुरिन्थियों 2:10-16)।

शारीरिक समझ (*ho nous tēs sarkos autou,* मूल में "उसके शरीर का मन") NASB, KJV और NKJV में इस्तेमाल हुआ वाक्यांश है। इस वाक्यांश का अनुवाद "कामुक मन" (RSV), "सोच का मानवीय ढंग" (NRSV), "सांसारिक मन" (NEB), और

''अनाध्यात्मिक मन'' (TNIV) भी हुआ है।

पौलुस के कहने का अर्थ ईश्वरीय प्रकाशन के विपरीत सांसारिक सोच से बने धर्म थे। वह जिनका विश्वदर्शन परमेश्वर के वचन से नहीं, बल्कि मानवीय बुद्धि पर निर्भरता से तय होता है। बौद्धिक घमण्ड वह कारण है जिस पर कुछ लोग अपने विचारों को आधारित करते हैं न कि परमेश्वर के वचन बाइबल में प्रकाशित ज्ञान पर।

''और उस शिरोमणि को पकड़े नहीं रहता'' (2:19)

पौलुस ने शारीरिक सोच की समस्या बताई की कि वे अलग-अलग झूठी शिक्षाओं पर ध्यान लगाते थे **और उस शिरोमणि को पकड़े नहीं रहते।** यीशु स्वर्ग और पृथ्वी का हाकिम है (मत्ती 28:18; इफिसियों 1:20-23)। यह सच होने के बावजूद केवल वही कलीसिया जिसका वह सिर है, सिर के रूप में उसका आदर करती और उसके अधीन होती है (इफिसियों 5:24)। यीशु जो सिर है, देह जो कलीसिया है, से वैसे ही जुड़ा है, जैसे मानवीय सिर मानवीय देह से जुड़ा होता है। नियन्त्रण का केन्द्र सिर है। देह के लिए अपनी चिंता के कारण सिर इसकी देखभाल करता, इसकी गतिविधियों का संचालन करता और इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

क्या पौलुस ''उस शिरोमणि को पकड़े नहीं रहता'' कहकर बाहर के लोगों की बात कर रहा था या मसीह लोगों की? ऐसा लगता नहीं है कि उसके कहने का अर्थ बाहर के लोग हैं, तो फिर वे शिरोमणि को पकड़े कैसे नहीं रख सकते थे? यदि वह मसीही लोगों की बात कर रहा था तो पौलुस के कहने का अर्थ था कि कुछ लोगों ने सिर को पकड़े रखना छोड़ दिया है। सम्भवतया बाद वाली बात ही इसका अर्थ है। ''पकड़े नहीं'' के नकारात्मक के साथ वर्तमान कृदंत (*kratōn*) का अर्थ है कि अपने घमण्ड के कारण उन्होंने सिर को पकड़े नहीं रखा था। उन्होंने यीशु की शिक्षा से जुड़े रहना छोड़ दिया था और उसके वफ़ादार होना बंद कर दिया था।

सबसे महत्वपूर्ण बात मसीही व्यक्ति का मसीह के साथ सम्बन्ध है। जब तक कोई मसीह को पकड़े रखता है, तब तक वह आत्मिक रूप में बढ़ सकता है। अपने इस सम्बन्ध को खत्म होने की अनुमति देने वाला व्यक्ति सूखकर आग में डाल दिया जाएगा (यूहन्ना 15:5, 6)।

यदि कोई मसीह की देह के भीतर सिर को पकड़े रहना छोड़ देता है तो वह बेदीन हो जाता है। इसके अलावा नवजात स्थिति में रहने वाला व्यक्ति जो शारीरिक सोच से आगे नहीं बढ़ पाता है, वह आत्मिक वास्तविकताओं को समझ नहीं सकता है (1 कुरिन्थियों 2:14—3:3)। यह किसी के साथ भी हो सकता है, जो यीशु को जो कलीसिया का सिर है, पकड़े नहीं रहता। यीशु के साथ सम्बन्ध बनाए रखने और उसमें पाई जाने वाली आत्मिक खुराक पाने का एकमात्र ढंग उसे पकड़े रखना और उसकी शिक्षा को मानते रहना है।

''जिस से सारी देह'' (2:19)

यूनानी भाषा में (*ex hou,* जिसका अनुवाद **जिससे**) वाक्यांश आयत 19 के ''शिरोमणि'' के लिए शब्द को सुधार देता है (*kephalē*)। ''जिससे'' पुलिंग है जबकि ''शिरोमणि'' स्त्रीलिंग है। इस कारण कुछ लोगों ने निष्कर्ष निकाला है, कि शिरोमणि यहां यीशु के लिए नहीं है। शवेज़र ने इस आपत्ति का उत्तर दिया है: ''यहां पर मसीह पर ध्यान इतनी हद तक है कि

यूनानी भाषा में 'शिरोमणि' चाहे स्त्रीलिंग में है पर लेखक सापेक्षिक सर्वनाम पुलिंग का इस्तेमाल करता है।''[13] अन्य वचनों में यीशु को देह का ''सिर'' कहा गया है (1 कुरिन्थियों 11:3; इफिसियों 1:22; 4:15; 5:23; कुलुस्सियों 1:18; 2:10)।

''जिससे'' खुराक के उस स्रोत की ओर संकेत है, जो **सारी देह** को खुराक देता है। ज़ोर ''जिस'' और ''सारी'' पर होना चाहिए क्योंकि सिर से उन्नति पाने वाले शरीर के केवल कुछ अंग नहीं हैं। पूरे शरीर का हर अंग केवल तभी बढ़ सकता है जब इसका सम्बन्ध सिर से और अन्य अंगों से हो।

आत्मिक विकास के लिए यीशु के साथ शरीर का सम्बन्ध आवश्यक है। वह हर अंग को मिलने वाले लाभों के द्वारा शरीर के हर अंग की आत्मिक आवश्यकता को पूरा करता है। शरीर बेहतरीन ढंग से तभी काम करता है जब शरीर का हर अंग पूरे शरीर के लिए देखभाल में सहायता के लिए अपना योगदान दे रहा हो। पौलुस ने कलीसिया के सदस्यों के बीच उपयुक्त सम्बन्ध को समझाने के लिए एक और जगह मानवीय शरीर का इस्तेमाल किया (1 कुरिन्थियों 12:14-26; इफिसियों 5:15, 16)।

''जोड़ों और पट्ठों के द्वारा पालन-पोषण पाकर और एक साथ गठकर, परमेश्वर की ओर से बढ़ती जाती है'' (2:19)

पौलुस ने कुलुस्सियों को यह बताने के लिए कि बढ़ने के लिए उन्हें क्या करना है, दो यूनानी वर्तमान कृदंतों *epichorēgoumenon* (**पालन-पोषण पाकर**) और *sumbibazomenon* (**एक साथ गठकर**) का इस्तेमाल किया। दोनों यूनानी शब्द निरन्तर क्रिया को दिखाते हैं। यदि शरीर को आत्मिक खुराक लगातार मिलती हो और इसे एक साथ रखा जाए तो यह बढ़ सकता है। यदि शरीर के अंग काट दिए जाएं, सिर से अलग कर दिए जाएं, तो यह बढ़ नहीं सकता। यीशु अपने चेलों को एक करने का इच्छुक था (यूहन्ना 17:20-23) न कि उन्हें बांटने का (1 कुरिन्थियों 1:10)। सिर अर्थात यीशु के बीच बनी एकता मण्डली के भीतर विकास को बढ़ावा दे सकती है जबकि फूट इसे जल्द नाश कर सकती है। किसी भी मण्डली के बढ़ने की सबसे बड़ी रुकावटों में से एक यीशु के साथ निकट सम्बन्ध पर आधारित एकता की कमी है।

बढ़ती जाती है (*auxō*) का अर्थ है कि शरीर की आवश्यकताएं होती हैं और यह एकजुट है, इस कारण बढ़ने की प्रक्रिया जारी रहेगी। पौलुस किसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तर्क नहीं दे रहा था कि बढ़ने का कारण **जोड़ों और पट्ठों** को कहा गया है। जोड़ों से शरीर को लचक और गति मिलती है। पट्ठे शरीर को एक साथ रखते हैं और जोड़ों और शरीर के अंगों को मिलकर काम करने में सहायता करते हैं। सिर के साथ सहयोग करते हुए शरीर की गति, पोषण, विकास और पूरी देखभाल के लिए हर किसी की आवश्यकता है।

पौलुस के कहने का अर्थ था कि पूरे शरीर की भलाई के लिए शरीर का इकट्ठे रहना और उसकी आवश्यकताओं का पूरा होना आवश्यक है। सिर के साथ सहयोग करते हुए वह पूरे शरीर की खुराक और देखभाल को सम्भव बनाते हैं। शरीर की भलाई के लिए काम करने में हर अंग का अपना योगदान है। जोड़ों और पट्ठों के बिना शरीर बिखर जाएगा और काम नहीं कर पाएगा। सिर के बिना शरीर नियन्त्रण, दिशा और देखभाल नहीं कर पाएगा। जब अंग मिलकर काम करते

हैं और सिर के साथ सहयोग करते हैं तो शरीर बढ़ सकता है और काम कर सकता है।

खुराक "जोड़ों और पट्ठों" के द्वारा वैसे ही नहीं पहुंचाई जाती जैसे शरीर भोजन को पचाता और लहू तन्त्र शेष शरीर को खुराक पहुंचाता है। जो यह सोचते हैं कि पौलुस को शरीर के इन कामों का संकेत देना चाहिए था, वे गलत हैं। वह यह बता रहा था कि पूरी देह की भलाई के लिए शरीर के हर अंग का काम करना आवश्यक है। शरीर के अपने पालन पोषण के कामों के यह सही-सही विवरण पौलुस के समय के चिकित्सीय और वैज्ञानिक शिक्षा से अलग हैं।

पौलुस जो सच्चाई बता रहा था वह यह है कि झूठे शिक्षकों ने सिर के साथ जो बढ़ने का एकमात्र स्रोत है, अपना सम्बन्ध तोड़ लिया था। इस सम्बन्ध के तोड़ने के कारण विकास बन्द हो जाता है और अन्त में मृत्यु हो जाती है। आत्मिक विकास तभी हो सकता है, जब कलीसिया यीशु को कसकर पकड़े रहे और शरीर के हर अंग के आत्मिक विकास की इच्छा करे।

इफिसियों 4:11-16 में यीशु ने समझाया कि परमेश्वर ने कलीसिया में कुछ अगुवे रखे हैं ताकि यह बढ़ सकें और अपने आपको बना सकें। बढ़ने के लिए संसाधन देने वाला परमेश्वर ही है: वचन (1 पतरस 2:2) और आत्मा की ओर से सहायता (इफिसियों 3:16)। परमेश्वर की सहायता के बिना देह फल नहीं ला सकती (यूहन्ना 15:4, 5); और अंगों के सही ढंग से काम करने के बिना देह बढ़ नहीं सकती। देह की भलाई सिर पर निर्भर है और सिर की इच्छाओं को पूरा करना देह पर निर्भर है। परमेश्वर बढ़ने का स्रोत देता है जबकि विभिन्न अंगों को यह देखना आवश्यक है कि परमेश्वर की खुराक शरीर के हर अंग को मिले। बढ़ना केवल तभी हो सकता है जब शरीर परमेश्वर के साथ सही ढंग से सहयोग करे और उससे उसे वह मिले जो इसके बढ़ने का कारण हो।

सिर, जोड़ों और पट्ठों का अर्थ अक्षरश: समझने के बजाय प्रतीकात्मक अर्थ में समझा जाना आवश्यक है। पौलुस के उदाहरण में मसीह सिर है जबकि अपने जोड़ों और पट्ठों के साथ देह कलीसिया है। देह की सबसे अधिक उन्नति तभी होती है जब यह सिर के साथ सहयोग करती है और देह का हर अंग पूरी देह के लाभ के लिए अपना-अपना काम करता है।

संसार की शिक्षाओं की ओर से मसीह के साथ मरना (2:20-23)

[20]जब कि तुम मसीह के साथ संसार की आदि शिक्षा की ओर से मर गए हो, तो फिर क्यों उनके समान जो संसार के हैं, जीवन बिताते हो। ऐसी विधियों के वश में क्यों रहते हो? [21]कि यह न छूना, उसे न चखना, और उसे हाथ न लगाना। [22](क्योंकि ये सब वस्तु काम में लाते-लाते नाश हो जाएंगी)। [23]इन विधियों में अपनी इच्छा के अनुसार गढ़ी हुई भक्ति की रीति, और दीनता, और शारीरिक योगाभ्यास के भाव से ज्ञान का नाम तो है, परन्तु शारीरिक लालसाओं के रोकने में इन से कुछ भी लाभ नहीं होता।

आयतें 18 और 19 में पौलुस ने ज़ोर देकर कहा कि झूठी शिक्षा कुलुस्सियों को परमेश्वर से दूर कर सकती थी। भाइयों को ऐसा न होने देने की चेतावनी देने से पहले उसने यह कहकर कि

मसीह परमेश्वर का स्वरूप, सृष्टिकर्त्ता, कलीसिया सहित सब बातों में शिरोमणि और परमेश्वर के साथ मिलाप का आधार है, उसकी श्रेष्ठता और अधिकार की पुष्टि की (1:15-20)। सब बुद्धि और ज्ञान उसी में है। परमेश्वर की परिपूर्णता उसी में है और सिद्ध होने का अवसर उसी में है। कुलुस्से के मसीही लोगों को उनकी पापपूर्ण लालसाओं को उतार दिया गया था और उसमें उनके सब पाप क्षमा कर दिए गए थे (2:3-13)।

इन कारणों से कुलुस्सियों के लिए यीशु में बने रहना और केवल उसी के पीछे चलना आवश्यक था। पौलुस ने झूठी शिक्षा से बचने के और कारण बताए:

(1) व्यवस्था को बीच में से हटाकर क्रूस पर कीलों से जड़ दिया गया था (2:14)। इस ने इसके अधीन रहने वालों को स्वन्त्रता नहीं, बल्कि केवल दासता ही दी। यह जीवन नहीं दे सकती, बल्कि इससे मृत्यु ही मिलती थी।

(2) धार्मिक पूजा पद्धतियां चाहे यहूदियों की हों या अन्यजातियों की, न तो स्वतन्त्रता दिला सकती थीं और न ही आत्मिक उन्नति। वे केवल उन में लगे लोगों को दास बनाती थीं (2:8)। ऐसी पद्धतियों को मानने वालों से उनका अपेक्षित प्रतिफल छिन जाना था।

इन सच्चाइयों से आयतें 20 से 23 में पौलुस की शिक्षा की पृष्ठभूमि मिल गई। यहां उसने ज़ोर दिया कि शारीरिक आवेगों को नियन्त्रित करने की संसार की सलाह शारीरिक इच्छा युक्तियों पर छूट नहीं दे सकते थे। इसके बजाय सांसारिक पद्धतियां उन्हें मानने वालों को केवल दास ही बनाती थीं। कुलुस्से के लोग संसार के नियमों के लिए मसीह के साथ मर गए थे। जिन नियमों का संकेत पौलुस दे रहा था वे उन बातों को नियन्त्रित करते थे जिनका नाशवान होने के कारण कोई महत्व नहीं था।

मसीह के साथ जुड़े रहना जो स्वन्त्रता और आत्मनियन्त्रता का एक स्रोत है, आत्मिक उन्नति और मसीही स्वतन्त्रता और स्वर्ग में प्रवेश का मार्ग है। जीवन का कोई और ढंग वह नहीं दे सकता, जो यीशु देता है।

"जब कि तुम मसीह के साथ संसार की आदि शिक्षा की ओर से मर गए हो" (2:20)

कुलुस्से के लोग **मसीह के साथ मर गए** थे। पुरानी जीवन-शैलियों का अन्त होना आवश्यक था ताकि उनके नये जीवन मसीह को समर्पित हो सकें। एक प्रतीकात्मक अर्थ में वे उसकी मृत्यु और उसकी मृत्यु के उद्देश्य, पाप से छुटकारे में सहभागी थे। उन्हें पापपूर्ण सांसारिक पद्धतियों से बचना चाहिए था और इस कारण सांसारिक पद्धतियों के बजाय यीशु के लिए जीवित होना चाहिए था।

यह लिखते हुए कि बपतिस्मा लोगों को मसीह की मृत्यु में लाता है, पौलुस ने रोमियों 6:3 में बपतिस्मे को मसीह की मृत्यु के साथ जोड़ दिया। उसने आगे कहा कि "उस मृत्यु का बपतिस्मा पाने से हम उसके साथ गाड़े गए, ... हमारा पुराना मनुष्यत्व उसके साथ क्रूस पर चढ़ाया गया, ... ताकि हम आगे को पाप के दासत्व में न रहें" (रोमियों 6:4-6)। उसने यह कहकर कि वह मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाया गया था, इसी विचार को व्यक्त किया (गलातियों 2:20)। इसने उसके जीवन को बहुत प्रभावित किया, क्योंकि उसने लिखा, "अब मैं जीवित न

रहा, पर मसीह मुझ में जीवित है।" कुलुस्सियों 2:20 में "मर गए" का अनुवाद एक अनिश्चित भूतकाल रूप से किया गया है, जो संकेत देता है कि मसीह के साथ मृत्यु का अनुभव सम्पूर्ण और अन्तिम था। गलातियों 2:20 में पौलुस ने कृदंत रूप का इस्तेमाल किया, जिसका अर्थ है कि वह मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाया गया था और मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाए जाने की स्थिति में बना रहा।

पौलुस ने समझाया कि मसीही लोग अब पाप के दास नहीं थे (रोमियों 6:1–7)। बपतिस्मे में यीशु की मृत्यु की सहभागिता करने वाले लोग पाप के लिए मर गए हैं। कुलुस्सियों को पाप के वश में से छुड़ाया गया था ताकि वे एक नये प्रकार का जीवन जीएं। आयत 20 में पौलुस ने उन्हें याद दिलाया कि मसीह के साथ उनके मरने का प्रमाण उनका **संसार की आदि शिक्षा** से मरना होना चाहिए।

संसार के नियमों में कोई जीवन नहीं मिलता है। कुलुस्से के लोग संसार की आदि शिक्षा से मरकर बच गए थे। अपने पुराने जीवनों में वे मसीह में जीवन से मरे हुए थे और संसार के लिए जीवित थे; अपने वर्तमान जीवनों में वे संसार के लिए मरे हुए थे परन्तु मसीह के लिए जीवित थे। वे संसार की आदि शिक्षा के लिए मर गए थे और अब उन्हें उनके अनुसार नहीं जीना था।

यहां पर **जबकि** के इस्तेमाल का अर्थ यह नहीं है कि पौलुस मसीह के साथ उनकी मृत्यु पर संदेह कर रहा था: "यूनानी भाषा में एक सशर्त खण्ड है, 'यदि ... तुम मर गए' (RSV) जो कि एक अलंकारिक यन्त्र है और किसी संदेह का संकेत नहीं देता है; यह किसी तथ्य को कहने का ढंग है, जिससे कुछ परिणाम निकाले जा रहे है।"[14]

यह सवाल करने के बजाय कि वे "मसीह के साथ मरे" थे या नहीं पौलुस यह दिखा रहा था कि उनके मसीह की मृत्यु की सहभागिता करने का क्या परिणाम था। बपतिस्मे में मसीह के साथ दफ़नाए जाने और जी उठने से जीवन के उनके ढंग में बदलाव आ जाना चाहिए था (आयत 12)। इसका परिणाम मसीह के लिए नये जन्म के बाद "संसार की आदि शिक्षा" से मृत्यु होना चाहिए।

पौलुस कुलुस्सियों को समझाना चाहता था कि आयत 20 वाली "संसार की आदि शिक्षा" (*stoicheiōn tou kosmou*) का नियन्त्रण हठ नहीं होना चाहिए (2:8 पर चर्चा देखें)। कुलुस्से के लोग इस आदि शिक्षा से मसीह की मृत्यु और दफ़नाए जाने में सहभागिता करके मर गए थे। सांसारिक फ़िलॉसफ़ियों से मरने के कारण इन भाइयों को अपने आपको उन्हें इस प्रकार नहीं सौंपना चाहिए था, जैसे वे यीशु मसीह के साथ सम्बन्ध में उनके लिए लाभदायक हो सकते हों।

"तो फिर क्यों उन के समान जो संसार के हैं, जीवन बिताते हो तुम ऐसी विधियों के वश में क्यों रहते हो?" (2:20)

प्रेरितों के लिए यीशु ने कहा था, "तुम संसार के नहीं, वरन मैं ने तुम्हें संसार में से चुन लिया है" (यूहन्ना 15:19)। पिता के सामने अपनी प्रार्थना में उसने कहा था, "ये जगत में रहेंगे, ..." (यूहन्ना 17:11); "वे भी संसार के नहीं" (यूहन्ना 17:14, 16)। मसीही लोगों का लक्ष्य संसार के साथ मेल खाए बिना संसार में रहना है (रोमियों 12:2)।

हमारे लिए यह समझना आवश्यक है कि पाप के प्रति इसके सभी प्रलोभनों के साथ हम संसार में हैं, पर हम संसार के नहीं हैं। बेशक हम संसार में **जीवन बिताते** हुए इससे बच नहीं सकते हैं पर हम संसार को अपने जीवनों से बाहर तो निकाल सकते हैं। हमें यह समझना आवश्यक है कि संसार में ''जीवन बिताते'' (*zōntes* ''रहते'') हुए हम उन्हीं नियमों से न चलें जिनसे संसार चलता है।

1:6 में पौलुस ने ''संसार'' (*kosmos*) की बात भौगोलिक क्षेत्र में की। यहां पर पौलुस ने उस समाज का अर्थ देने के लिए जिसमें कुलुस्से के लोग रहते थे, उसी शब्द का इस्तेमाल किया।

तुम ऐसी विधियों के वश में रहते हो वाक्यांश एक यूनानी शब्द *dogmatizesthe* यह क्रिया शब्द 2:14 वाले संज्ञा शब्द *dogmata* (''लेख'') के परिवार का है। दोनों शब्दों का आधार चाहे एक ही मूल शब्द है पर आयत 20 में पौलुस का हवाला एक ही विधि के सम्बन्ध में नहीं था। 2:14 में उसका हवाला परमेश्वर द्वारा मूसा को दिए गए नियम और व्यवस्था की विधियां था। आयत 20 में वह व्यवस्था की विधियों की या सांसारिक सोच से बनी विधियों की बात कर रहा था।

परमेश्वर के नियमों से दूर जाने वाले लोग आम तौर पर स्वन्त्रता की खोज में ऐसा करते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि उसके नियम अधिक ही पाबंदी लगाते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि स्वतन्त्रता के लिए उनके नियम उन्हें स्वतन्त्रता नहीं, बल्कि वास्तव में दासता देते हैं (2 पतरस 2:19; यूहन्ना 8:34; रोमियों 6:16 भी देखें)। प्रसन्नता के लिए अच्छे नियमों का होना आवश्यक है। कोई नियम न होने से शारीरिक दासता के साथ-साथ आत्मिक दासता भी आ सकती है। यातायात के नियमों के बिना किसी बड़े नगर में गाड़ी चलाने की कोशिश करने की कल्पना करें। दुर्घटनाएं रोकी नहीं जाएंगी और यातायात भी चरमरा जाएगा। सांसारिक लालसाओं पर काबू पाने में, पाप के ऊपर विजय प्राप्त करने और आत्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए केवल यीशु की शिक्षा हमें योग्य बना सकती है।

''यह न छूना, उसे न चखना, और उसे हाथ न लगाना'' (2:21)

अधीन करने वाले वे कुछ नियम कौन से थे, जिनका उन्हें सामना करना पड़ा था? पौलुस ने ये उदाहरण दिए: ''यह न छूना, उसे न चखना, और उसे हाथ न लगाना!'' ये नियम घटते क्रम में दिए गए हैं; ''छूना'' बहुत ज़बर्दस्त शब्द है, जिसके बाद ''चखना'' और फिर ''हाथ लगाना'' आता है। छूने के लिए चखने जितना या चखने के लिए हाथ लगाने जितना नहीं होना था। कुलुस्सियों को जिन नियमों का पता था, वह उन्हें छूने, चखने या हाथ लगाने से रोकते थे।

झूठी शिक्षा देने वाले के पास ''न करना'' के नियमों की एक सूची थी। यीशु की शिक्षा का यह ढंग नहीं है। नकारात्मक की सूची से बचने का अर्थ आवश्यक नहीं है कि उससे सकारात्मक जीवन निकलेगा। नकारात्मक को मिटाने का बेहतरीन ढंग सकारात्मक को पर ज़ोर देना है (रोमियों 13:8-11)। परन्तु मसीहियत में ''यह करो'' की शिक्षा के साथ-साथ ''न करो'' के अपने नियम नहीं हैं।

नये नियम को ध्यान से पढ़ने पर पता चलेगा कि यीशु ने बार-बार कहा, ''न करो।'' पहाड़ी उपदेश में (मत्ती 5-7), उसने कहा:

- ''शपथ न खाना'' (5:34)।
- ''जो तेरा दाहिना हाथ करता है, उसे तेरा बायां हाथ न जानने पाए'' (6:3)।
- ''प्रार्थना करते समय बकबक न करो'' (6:7)।
- ''तुम उनके समान न बनो'' (6:8)।
- ''पृथ्वी पर धन इकट्ठा न करो'' (6:19)।
- ''चिंता न करो'' (6:25; देखें आयतें 31, 34)।
- ''दोष मत लगाओ'' (7:1)।
- ''पवित्र वस्तु कुत्तों को न दो'' (7:6)।

उपदेश की और बातें जो गलत हैं, उसे करने से सावधान करती हैं। सकारात्मक शिक्षा जो बताती है कि क्या करना है, वह महत्वपूर्ण है, परन्तु सिखाने वाले को लोगों को यह भी बताना आवश्यक है कि वे क्या न करें।

पौलुस ने कुछ विधियों का नाम बताकर कुलुस्सियों को समझाया कि ऐसी विधियों से बचें। शायद यह आम सूची थी जिससे कुलुस्से के लोग परिचित थे। उसका उद्देश्य समाज में बताए जा रहे सभी नियमों की सूची नहीं देना था, बल्कि वैसी विधियों का एक नमूना देना था, जो उसके दिमाग में थी। एच. सी. जी. माउल ने इन नियमों को ''फरीसियों की पाठशालाओं के द्वारा विकसित और विस्तार दी गई मूसा की व्यवस्था की ... पाबन्दियां'' माना।[15] अधिक सम्भावना है कि वे मनुष्यों की आज्ञाएं थीं जिन्हें कुछ लोग व्यवस्था से जुड़ी मानते हो सकते हैं। यह विशेष नियम कठोर पाबन्दियों और कई बार निन्दनीय शारीरिक नियमों के द्वारा भक्ति दिखाने के लिए बनाए गए थे। माउल ने आगे लिखा:

> स्पष्टतया, जहां तक उनके मूसा के होने की बात है, संत पौलुस *उनके अपने काल में और उनके अपने उद्देश्य के लिए* उनके ईश्वरीय अधिकार को पूरी तरह से समझता था। परन्तु वह काल बीत चुका था, यानी उद्देश्य और उद्देश्य मसीह में पूरा हो चुका था। अब उन्हें थोपने का अर्थ परमेश्वर के आदेश को मनुष्य के मनमाने ढंग से इस्तेमाल के लिए लागू करना था।[16]

कोई भी व्यक्ति जो पुराने नियम की विधियों को मसीही युग में लोगों पर थोपता है, वह ऐसा परमेश्वर के नहीं, बल्कि मुनष्य के अधिकार से कर रहा है।

कइयों का मत है कि पौलुस सरकारी नियमों के मनुष्यों की ओर से होने की बात कर रहा था, परन्तु यह उसकी शिक्षा नहीं होनी थी, क्योंकि मसीही लोगों को सरकारी नियमों को मानने की आज्ञा दी गई थी। ''हर एक व्यक्ति प्रधान अधिकारियों के आधीन रहे ...'' (रोमियों 13:1-4; देखें तीतुस 3:1); ''प्रभु के लिए मनुष्यों के ठहराए हुए हर एक प्रबन्ध के आधीन में रहो'' (1 पतरस 2:13)। पौलुस द्वारा यहां बताए गए नियमों के जैसे नियम सरकारी नियम नहीं हैं; बल्कि वह उन छोटे-छोटे धार्मिक और नैतिक नियमों की बात कर रहा था, जिनका कोई नैतिक लाभ नहीं है।

पौलुस द्वारा दी गई तीन पाबन्दियों में अन्तर करना आसान नहीं है। वह शारीरिक निरोधों की बात कर रहा था, न कि सनातन, अदृश्य, आत्मिक संसार की बातों की (2 कुरिन्थियों 4:18)। यहां बताए गए नियम नाशवान अर्थात भौतिक संसार के दायरे के हैं और आत्मिकता में बढ़ाने में इनमें कोई प्रबन्ध नहीं था।

(1) ''छूना'' (*haptō* से *hapsē*) का अर्थ स्त्री को छूने के सम्बन्ध में इस्तेमाल किए जाने पर ''सैक्सुअल सम्पर्क'' होना हो सकता है (1 कुरिन्थियों 7:1)। और भी बढ़कर इस शब्द का अर्थ ''छूना'' (मत्ती 8:3, 15) या ''छू'' (यूहन्ना 20:17) हो सकता है पर कई बार जैसा इस आयत में है ''भाग लेना'' या ''पकड़ना'' हो सकता है। इसमें सैक्सुअल सम्बन्ध और भोजन दोनों हो सकते हैं। पौलुस ने भविष्यद्वाणी की कि लोगों को भोजनों और विवाह से दूर रहने की आज्ञा दी जाएगी (1 तीमुथियुस 4:3)। कुछ लोगों ने निष्कर्ष निकाल लिया है कि *hapse* के अपने इस्तेमाल से पौलुस के कहने का अर्थ केवल सैक्सुअल सम्बन्ध था। यहां इसका अर्थ अधिक सामान्य है, चाहे इसमें सैक्सुअल बातें शामिल हो सकती हैं।

ओ' ब्रिन ने तीन कारण दिए हैं कि *hapsē* अर्थात ''छूना'' सैक्सुअल सम्बन्धों तक सीमित नहीं है:

> पहली बार, इस पत्र में कहीं भी सैक्सुअल सम्बन्धों की मनाही का ज़रा सा संकेत नहीं है (1 तीमुथियुस 4:3 वाले झूठे शिक्षक विवाह करने से मना करते थे परन्तु वहां/के, ''विवाह'' इस्तेमाल हुआ है)। दूसरा क्रिया का यूनानी शब्द, a,ptomai [''छूना''] को इस अर्थ के साथ लागू करने पर क्रिया का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है कि अर्थ यही है [''छूना''] ही है (तुलना 20:4, 6; नीतिवचन 6:29; 1 कुरिन्थियों 7:1)। क्रिया शब्द अपने आप कई बातों में लागू हो सकता है। तीसरा इन शब्दों के तुरन्त बाद (आयत 22, ''यह सब वस्तुएं काम में लाते-लाते नष्ट हो जाएंगे'') वहां की चीज़ों जैसी भौतिक वस्तुओं का सुझाव देता है: यदि सैक्सुअल सम्बन्धों की बात नहीं है तो आयत 22 लागू नहीं होती है।[17]

(2) ''चखना'' (*geuō*) का मूल में अर्थ भोजन या पेय के सम्बन्ध में ''मुंह से कुछ चखना'' है (मत्ती 27:34; लूका 14:24)। प्रतीकात्मक अर्थ में इसका अर्थ किसी चीज़ का ''अनुभव करना'' है (इब्रानियों 6:4, 5; 1 पतरस 2:3) जैसे मृत्यु (मत्ती 16:28; यूहन्ना 8:52; इब्रानियों 2:9)।

(3) ''हाथ लगाना'' (*thinganō*) का अर्थ चाहे ''छूना'' के जैसा ही है, पर इसमें सांसारिक लेखों में इसका अर्थ नैतिक है। इब्रानियों 11:28 में इसी शब्द का अर्थ नष्ट करना और इब्रानियों 12:20 में इसका इस्तेमाल परमेश्वर के व्यवस्था को देने के समय सीनै पर्वत को किसी पशु के छूने से है। 2:21 में पौलुस के कहने का अर्थ है कि जीवन की नाश्वान वस्तुओं के साथ सम्पर्क से दूर रहना।

शरीर की अवहेलना और दुरुपयोग से आत्मा की शुद्धता या निर्बलताओं का उपचार नहीं हो सकता। यह योग्यता अन्दर से आती है और शरीर में दिखाई जाती है। प्रलोभन चाहे शरीर के द्वारा आते हैं पर शरीर अपने आप में बुराई का स्रोत नहीं है।

"(ये सब वस्तुएं काम में लाते-लाते नाश हो जाएंगी)" (2:22)

जैसा कि यहां सही अनुवाद किया गया है, यह कोष्ठक में रखी गई अभिव्यक्ति है; वरना यहां पर इस वाक्यांश की व्याख्या करना कठिन हो जाता। पौलुस एक अस्थाई, शारीरिक प्रकृति वाली चीज़ों अर्थात उन चीज़ों की बात कर रहा था, जिन्हें छुआ, चखा और हाथ लगाया जा सकता है। ये चीज़ें इस्तेमाल में आती हैं और फिर खत्म हो जाती हैं, परन्तु आत्मिक चीज़ें कभी खत्म नहीं होतीं (1 यूहन्ना 2:15-17)। आयतें 22 और 23 में पौलुस ने उन विधियों को न मानने के तीन कारण बताए, जिनका उल्लेख उसने आयत 20 में किया और आयत 21 में उसे समझाया।

पहले तो ये विधियां अनन्त बातों के लिए नहीं, बल्कि संसार की अस्थाई बातों अर्थात उन नाशवान बातों की हैं, जिन्हें इस्तेमाल किए जाने पर उनका इस्तेमाल नहीं हो पाता है। ऐसी विधियों को मानने वाले लोग यह समझ नहीं पाते हैं कि अनन्त मूल्य क्या है। जीवन की महत्वपूर्ण बातों का उनका एक गलत अर्थ है। उन्होंने कुलुस्सियों को यह सोचने लगवाना था कि सदा तक रहने वाली चीज़ों का मूल्य उन चीज़ों से तय होता है जो थोड़ी देर की हैं और अनन्तकाल के सामने बिना कीमत के हैं।

यहां पर प्रेरित की सोच मनुष्यों की बनाई हुई यहूदियों की आज्ञाओं को यीशु की ताड़ना से खूब मेल खाती है। उनकी परम्पराओं में पाए जाने वाले वर्जित काम परमेश्वर की आज्ञाओं का उल्लंघन करते हैं (मरकुस 7:7, 8)। उनकी परम्पराओं में साफ़-सफाई के नियम और भोजनों के खाने की पाबन्दियां थीं, जिन्हें उन्होंने अपनाकर दूसरों पर यह सोचकर थोप दिया था कि उनसे उनके मानने वालों में भक्तिपूर्ण व्यवहार बढ़ता है। यीशु ने प्रकट किया कि भक्ति से ऐसी शारीरिक पाबन्दियों का कोई सम्बन्ध नहीं है:

> "क्या तुम भी ऐसे नासमझ हो? क्या तुम नहीं समझते कि जो वस्तु बाहर से मनुष्य के भीतर जाती है, वह उसे अशुद्ध नहीं कर सकती? क्योंकि वह उसके मन में नहीं, परन्तु पेट में जाती है, और संडास में निकल जाती है? ... जो मनुष्य में से निकलता है, वही मनुष्य को अशुद्ध करता है" (मरकुस 7:18-20)।

एक और जगह उसने इस बात पर ज़ोर दिया कि परमेश्वर का राज्य जो कि आत्मिक है, "खाना-पीना नहीं" है (रोमियों 14:17)। परमेश्वर पेट और भोजन "दोनों को नाश करेगा" (1 कुरिन्थियों 6:13)।

इस आयत में वह इस सच्चाई पर ज़ोर देकर कि अपनी खातिर अपना इनकार करने में कोई आत्मिक मूल्य नहीं है। तपस्वियों के व्यवहार का उत्तर दे रहा है। मसीही जीवन परमेश्वर की आत्मिक बातों के आधार पर बना है; यह उन लोगों के बनाए नियमों पर आधारित नहीं है जिनका मानना है कि इस जीवन की नाशवान वस्तुओं से आत्मिकता उत्पन्न हो सकती है। शारीरिक जीवन के लिए कुछ वस्तुएं आवश्यक हैं, परन्तु मसीही लोगों के जीवनों में भक्ति उत्पन्न करने के साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। शारीरिक वस्तुओं पर ध्यान लगाकर जीना आत्मिकता में रुकावट बन जाता है। यीशु ने कहा, "कोई मनुष्य दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता" (मत्ती 6:24)।

"ये मनुष्यों की आज्ञाओं और शिक्षाओं के अनुसार हैं" (2:22)

यह वाक्यांश पौलुस द्वारा पहले बताई गई विधियों को न मानने का दूसरा कारण देता है: ऐसे नियम मानने आवश्यक नहीं हैं क्योंकि उनका आरम्भ मनुष्यों से हुआ है और केवल मनुष्यों ने ही उनको आरम्भ किया है। **मनुष्यों की आज्ञाओं और शिक्षाओं** वाक्यांश बाइबल में अन्य शब्दावलियों जैसा ही है। मत्ती 15:9 और मरकुस 7:7 यीशु ने यशायाह 29:13 की भविष्यद्वाणियों को उन यहूदियों पर लागू किया, जिन्होंने परमेश्वर की आज्ञाओं में अपनी आज्ञाएं और परम्पराएं मिला ली थीं। उसने कहा कि परमेश्वर के नियमों को मानने के बजाय वे अपनी ही बनाई परम्पराओं को मानने के लिए उन्हें नज़रअन्दाज़ करते थे (मरकुस 7:8)। इस प्रकार से वे परमेश्वर की आज्ञाओं को रद्द कर रहे थे (मरकुस 7:13)।

कुछ लोगों का मानना है, कि पौलुस कुछ यहूदियों की तपस्वी विधियों या ऐसेनियों की जीवन-शैलियों की बात कर रहा था, जो ब्रह्मचर्य और खाने-पीने के कठोर नियमों को मानते थे। यह सही हो सकता है क्योंकि ये दोनों समूह अपने अनुयायियों पर खाने-पीने के कठोर नियम लागू करते थे, परन्तु कोई भी पक्का नहीं बता सकता।

अनुवादित शब्द "मनुष्यों" (*anthrōpoi*) है जिसका अर्थ "मनुष्यजाति" है। इसमें पुरुष और स्त्रियां दोनों शामिल हैं। यूनानी शब्द *anēr* जो केवल पुरुष या पति के लिए है, कुलुस्सियों में केवल दो बार मिलता है, जहां इसका अनुवाद "पतियों" हुआ है (3:18, 19)। मनुष्यों की आज्ञाएं और शिक्षाएं पुरुषों और स्त्रियों दोनों पर प्रभाव का परिणाम हैं। समाज वह मानक नहीं है जिसके द्वारा मसीही लोगों का जीवन होना आवश्यक है। व्यवस्था के एकमात्र देने वाले यीशु (याकूब 4:12), के पास स्वर्ग और पृथ्वी का सारा अधिकार है (मत्ती 28:18) और वह अपनी आज्ञा मानने वालों को अनन्त उद्धार देता है (इब्रानियों 5:9)।

कुलुस्सियों को दिया गया पौलुस का निर्देश आज प्रासंगिक है। मसीही लोगों को उन लोगों से सावधान रहना चाहिए, जो परमेश्वर की आराधना और सेवा में कुछ भी नया लाते हैं, जो उन्हें पसन्द होता है। यीशु ने कहा कि पिता की आराधना "आत्मा और सच्चाई से" की जानी आवश्यक है (यूहन्ना 4:23, 24)। उसने प्रेरितों को यह भी समझाया कि उसके चेले बनने वालों को "वे सब बातें मानना" सिखाएं, जिनकी उसने आज्ञा दी है (मत्ती 28:20)। आरम्भिक कलीसिया "प्रेरितों की शिक्षा" में बनी रही थी (प्रेरितों 2:42)।

अध्याय 2 इस बात पर ज़ोर देता है कि मसीही लोग यीशु और केवल यीशु की ही मानें। बुद्धि और ज्ञान के सारे भण्डार उसी में पाए जाते हैं (आयत 3)। मसीही लोगों के रूप में हमें उसी में चलना (आयत 6) और उसी में मनाए जाना आवश्यक है (आयत 7); हमें मनुष्यों की परम्पराओं और संसार की आदि शिक्षा को नहीं मानना है (आयत 8)। हमें उन विधियों को मानने में जिन्हें हटा दिया गया है, किसी को अपना न्याय नहीं करने देना चाहिए (आयतें 14, 16)। हमें यीशु को पकड़ने रहने को छोड़ झूठी शिक्षा से भ्रमित होने से बचना है (आयत 18) और हमें मनुष्यों की आज्ञाओं और शिक्षाओं को मानने से दूर रहना आवश्यक है (आयत 22)।

"इन विधियों में ज्ञान का नाम तो है" (2:23)

कुछ लोगों ने बड़ी-बड़ी व्याख्याएं देते हुए इस वाक्य को नये सिरे से बनाने की इच्छा की

है परन्तु NASB में बेहतरीन अनुवाद दिया गया है।

स्पष्टतया पौलुस का इरादा सभी अस्वीकार्य मानवीय आज्ञाओं को साथ लेकर यह सूची देने का नहीं था। **इस** शब्द के सम्बन्ध में माउल ने सही अवलोकन किया है, "और संक्षेप में यदि इस शब्द को सहन किया जा सके तो *इन* जैसी मिलती-जुलती *बातें;* ऊपर दी गई पाबन्दियां, आयत 21, और वे सभी जो इन्हीं विधियों पर आधारित हैं।"[18] ऊपर बताई गई फ़िलॉसफ़ियों के जैसी कोई भी और फ़िलॉसफ़ी को मसीही लोगों को मानने की आवश्यकता नहीं है। कहीं और पौलुस ने शरीर की अस्वीकार्य गतिविधियों को बताया और फिर जोड़ा "ऐसे-ऐसे काम" (गलातियों 5:21), जिसका अर्थ है, कि यह सूची अधूरी नहीं थी परन्तु इसका इस्तेमाल शरीर के अन्य कामों के माप के रूप में किया जा सकता है।

नाम तो है अनुवाद *logos* से किया गया है, जिसका अनुवाद आम तौर पर "वचन" होता है। यहां विचार ज्ञान की *वास्तविकता* के विपरीत इसकी "अभिव्यक्ति," "प्रतिरूप," या "आभास" है। सांसारिक दृष्टिकोण से मनुष्यों की गढ़ी हुई आज्ञाएं समझदारी लग सकती हैं, क्योंकि ऐसा लगता है कि उनसे आत्मिक उन्नति देने के लिए आवश्यक आत्मनियन्त्रण मिलता है। परन्तु आत्मनियन्त्रण अपने आप में बुरी बातों से बचने के लिए प्रेरणा नहीं देता और न ही पवित्रता के बढ़ने की गारंटी देता है। इस तथ्य का कि कोई व्यक्ति बुराई करने से दूर रहता है अर्थ आवश्यक नहीं कि यह हो कि वह सकारात्मक यानी सही जीवन में ही लगा होगा। हो सकता है कि वह चोरी, झूठ न बोले, व्यभिचार या हत्या न करे परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अपने पड़ोसी की आवश्यकताओं को पूरा करके परमेश्वर के साथ निकट सम्बन्ध बनाएगा। भक्तिपूर्ण बनने के लिए शारीरिक व्यवहार को चलाने वाले कई नियमों के अलावा और भी आवश्यकता होती है।

यदि नियमों से समाज नियन्त्रित हो सकता तो पुलिस बलों और समाज के दबाव की आवश्यकता न होती। किसी समाज में किसी भी सम्भावित स्थिति से निपटने के लिए जो समाज के लिए हानिकारक हो सकती है, केवल नियमों की आवश्यकता होती। तो कोई अपराध होता ही न। नियम आवश्यक हैं परन्तु समाज में आत्मसंयम, स्थिरता और एकता लाने के लिए नियम से बढ़कर आवश्यकता होती है।

"अपनी इच्छा के अनुसार गढ़ी हुई भक्ति की रीति, और दीनता, और शारीरिक योगाभ्यास के भाव से" (2:23)

पौलुस ने गढ़ी गई मनुष्यों की तीन रीतियां बताईं: (1) **अपनी इच्छा के अनुसार गढ़ी हुई भक्ति की रीति,** (2) **दीनता** और (3) **शारीरिक योगाभ्यास।** "अपनी इच्छा के अनुसार गढ़ी हुई भक्ति की रीति" के लिए शब्द (*ethelothrēskia*) का अनुवाद TEV में "स्वर्गदूतों की पूजा" हुआ है; शवेज़र द्वारा भी यही अनुवाद सुझाया गया है।[19] कइयों का मत है कि यह स्वर्गदूतों की पूजा के सम्बन्ध में है जिसका उल्लेख आयत 18 में था। इस शब्द के आरम्भ का पता नहीं है और पौलुस द्वारा इसके इस्तेमाल से पहले साहित्य में यह नहीं मिलता है। इसलिए कुछ लोगों का निष्कर्ष है कि उसी ने इसे बनाया। नये नियम में यह शब्द केवल यहीं पर मिलता है इसलिए अन्य दस्तावेज़ों में इसके इस्तेमाल को इसका अर्थ तय करने के लिए विचार किया

जाना आवश्यक है। यह एक मिश्रित शब्द है जिसमें संज्ञा शब्द *thrēskeia* है, जिसका अनुवाद ''भक्ति'' हुआ है (याकूब 1:26, 27)। उपासना पर लागू करने पर *ethelothrēskia* का अर्थ गम्भीर सम्पर्ण की विनम्र सेवा के विपरीत आत्मिक आशिषों को कमाने वाले मानवीय गुण की धार्मिक सेवाएं हैं।

दोनों ही वचनों में इस अर्थ में आत्म इनकार के साथ कठोर उपवास शामिल हो सकता है। ओ'ब्रायन का सुझाव है, ''ऐसी तपस्वी रीतियां 'नीचा दिखाने की तकनीक' की एक किसम थी और स्वर्गीय भेदों के दर्शन पाने के लिए उन्हें प्रभावी माना जाता था।''[20] शायद कुछ लोगों का मानना था कि सबसे धार्मिक व्यक्ति वही है, जिसको शरीर से अपने आपको सबसे अधिक प्रताड़ित किया हुआ दिखाया जाए।

शारीरिक ''योगाभ्यास'' (*apheidia,* मूल में शरीर का ''अत्यधिक'' उपयोग) तपस्वियों द्वारा ही बहुत सराहा जाता था। उनकी मान्यता थी कि धार्मिक उत्साह और समर्पण कठोर शारीरिक अनुशासन के द्वारा पाया जा सकता है। शरीर को आत्मा की कैद माना जाता था, जो इसके दुखों के छुटकारे के साथ सहा जाने वाला बोझ था। आत्मा और शरीर को असम्बद्ध माना जाता था। पवित्रता को शरीर के कठोर व्यवहार के द्वारा, आत्मा के शरीर की कमज़ोर करने वाली लालसाओं से आत्मा को छुड़ाने के द्वारा पाए जाने की बात मानी जाती थी। पौलुस ने तीमुथियुस के नाम अपने पत्र में इसे उन लोगों की बात कहा जो ''ब्याह करने से रोकेंगे, और भोजन की कुछ वस्तुओं से परे रहने की आज्ञा देंगे'' (1 तीमुथियुस 4:3)।

बाल के काफ़िर याजकों को यही लगा था कि अपने शरीरों को घायल करके वे बाल का ध्यान खींच लेंगे और उसे सहायता की उनकी अपीलों का उत्तर देने के लिए मना लेंगे (1 राजाओं 18:26-28)। कुछ धर्मों में आज ही शारीरिक वियोग और बलिदान को भक्ति, आशिषें और परमेश्वर के साथ अच्छे सम्बन्ध पाने का माध्यम माना जाता है।

शरीर को कठोर नियन्त्रण में रखने वालों ने शायद यह व्यवहार अपना लिया था कि इन शर्तों को मानने से उन्हें परमेश्वर के सामने समर्थन मिलेगा और वे गुणों को कमाएंगे। श्रेष्ठ पवित्रता उत्पन्न करने के बजाय ऐसे व्यवहार ने उन्हें घमण्डी और अहंकारी बना दिया था। मनुष्यों की सोच को मानकर इन नियमों को मानने में सबसे सफल व्यक्ति ''तुम से पवित्र मुंह'' वाला व्यवहार आसानी से अपना सकता था।

''परन्तु शारीरिक लालसाओं के रोकने में इन [विधियों] से कुछ भी लाभ नहीं होता'' (2:23)

इस वाक्यांश को विद्वानों द्वारा तीन अलग-अलग ढंगों से समझा जाता है:

(1) *इन नियमों का कोई महत्व नहीं है, यह केवल शारीरिक लालसाओं को पूरा करते हैं।* यह व्याख्या **शारीरिक योगाभ्यास** को शारीरिक संतुष्टि देने के प्रयास की बात के रूप में लगती है। इस विचार के अनुसार पौलुस के कहने का अर्थ था कि यह नियम शारीरिक आनन्द देने के अयोग्य हैं, जो इन्हें मानने वालों द्वारा पाने की चाह की जाती थी।

(2) *इन नियमों को मानने से शारीरिक संतुष्टि मिलती है और इन्हें मानने वाले अधिक आत्मिक नहीं बनते। यह* विचार *pros* (''विरुद्ध'') शब्द को इसका अधिक प्रचलित अर्थ ''के

लिए'' देने के लिए लिया गया है। ओप्रायन ने व्याख्या की है:

> इन सभी प्रयासों का उद्देश्य *pros,* कठोर नियमों को मानना, अधिकारों और प्रधानों के प्रति श्रद्धा और आदर, संतुष्टि था। परन्तु सारी संतुष्टि ''शरीर'' *tēs-sarkos* की थी। ऊर्जा से भरे उनके धार्मिक जोश शरीर को नियन्त्रित नहीं कर सकते थे। बिल्कुल उलट।[21]

मनुष्यों के बनाए ये नियम वास्तव में शरीर के लिए इस विचार का समर्थन करने और *pros* का अर्थ ''के लिए'' बताने पर उस वाक्यांश का अनुवाद जैसा KJV में किया गया है ''शरीर को संतुष्ट करने के लिए किसी सम्मान में नहीं'' हो सकता है। RSV में चाहे ''शरीर में लिप्तता को रोकने में किसी काम का नहीं'' है पर टिप्पणी में ''किसी काम के नहीं, केवल शरीर को लिप्त करने का काम करते हैं'' है। पौलुस के कहने का अर्थ यही हो सकता है।

(3) *शारीरिक अभिलाषाओं को काबू में रखने में इन नियमों का कोई महत्व नहीं।* मनुष्यों के नियम शरीर के साथ कठोर व्यवहार की मांग करते हैं। परन्तु वे शारीरिक मोह को रोकते नहीं थे। पौलुस के कहने का अर्थ बहुत हद तक यह था कि मनुष्यों की विधियों, अपने आप गढ़ी गई भक्ति, अपने आप को नीचा करना, और शरीर के साथ कठोर व्यवहार करना शारीरिक मोह को दबाने में कोई सहायता नहीं करते थे। NASB में इसका अर्थ हार के अधिकतर अनुवादों की तरह दिया गया है।

पहली व्याख्या को ठुकराया जाना चाहिए, क्योंकि पिछले वाक्यांश में ''शारीरिक योगाभ्यास'' शारीरिक सन्तुष्टि का कारण नहीं हो सकता। पौलुस शरीर की नहीं, बल्कि शरीर की अभिलाषाओं की यानी भावनाओं की बात कर रहा था, जो मनुष्यजाति के निचले विचारों से निकलती हैं। दूसरी व्याख्या चाहे कई प्रकार से सराहनीय है पर लगता नहीं है कि पौलुस के कहने का अर्थ यह हो। तीसरी व्याख्या संदर्भ के साथ बेहतर मेल खाती हुई लगती हैं।

नये नियम में केवल यहां इस्तेमाल हुआ शब्द *plēsmonē* (''शारीरिक लालसाओं'') LXX में अठाइस बार मिलता है। इसका अर्थ ''संतुष्ट करना'' या ''रिझाना'' के अर्थ में ''पूर्ण स्थिति'' है। इसका अर्थ पहुंच के लिए लिप्त होने के अर्थ में पूरी तरह से शामिल होना भी हो सकता है।

आयत 20 में बताई गईं विधियां शारीरिक विधिता को रोकने के अयोग्य हैं। पौलुस समझा रहा था कि शारीरिक लिप्तता को नियन्त्रित करने की योग्यता मनुष्य के बनाए धर्म, अपने आपको नीचा दिखाने या शरीर के साथ कठोर व्यवहार से नहीं होता है। पवित्रता, शुद्धता और परमेश्वर के साथ निकटता को कठोर व्यवहार के साथ शरीर को दुख देकर या शारीरिक लालसाओं में लगने से नहीं पाया जा सकता है।

शारीरिक अनुशासन से थोड़ा लाभ होता है, परन्तु भक्ति सब बातों के लिए लाभदायक है (1 तीमुथियुस 4:8)। भक्तिपूर्ण जीवन से आत्मा का फल (गलातियों 5:22, 23) मिलता है जिसके द्वारा मसीही व्यक्ति को आत्मिक सामर्थ (इफिसियों 3:16) और संसार पर विजय पाने की शक्ति मिलती है (1 यूहन्ना 4:4)। परमेश्वर के लोगों को अपनी शारीरिक इच्छाओं को नियन्त्रित करने में सहायता के लिए नियमों आदि से कहीं अधिक की आवश्यकता होती है। ''क्योंकि यदि तुम शरीर के अनुसार दिन काटोगे, तो मरोगे, यदि आत्मा से देह की क्रियाओं को

मारोगे, तो जीवित रहोगे'' (रोमियों 8:13)।

मसीही लोग आत्मा (या ''पवित्र आत्मा'') के नयेपन में सेवा करते हैं, न कि पुराने पन में (रोमियों 2:29; 7:6; 2 कुरिन्थियों 3:6)। अपने नियमों के साथ व्यवस्था शारीरिक अभिलाषाओं को नियन्त्रित करने के लिए काफ़ी नहीं थी (रोमियों 8:3)। इसके बजाय यह शारीरिक इच्छाओं को भड़काने वाली थी (रोमियों 7:8)। अपने मनों को शारीरिक लालसाओं के ऊपर लगाने वाले लोग अपनी वासनाओं को वश में रखने के अयोग्य हैं (रोमियों 8:7)। मनुष्य के बनाए नियम उन मनों को वश में रखने के लिए काफ़ी नहीं हैं जो बदले नहीं हैं और जो आत्मा से प्रभावित नहीं हुए हैं। आत्मा को आत्मिक बातों से खिलाना, आत्मा को भूखे न रखना ही आत्मिक विकास का कारण है (1 पतरस 2:2)।

शरीर को बुरी तरह से घायल करना और कठिनाई देना पवित्रता का आभास नहीं है क्योंकि भक्ति को बढ़ाने के लिए यह ढंग नहीं है। उपवास से एक उद्देश्य सफल हो सकता है जैसा कि समाज से थोड़ी देर के लिए अलग होना। किसी के जीवन में बुराई को निकालने का प्रयास आवश्यक है, परन्तु इससे भी आवश्यक किसी के जीवन को आत्मिक बातों से भरना है। किसी का भी जीवन शून्य नहीं हो सकता। किसी के जीवन में यीशु के रहने से बुराई निकल जाती है।

यीशु ने कुलुस्सियों को व्यवस्था और पाप के दोष और दण्ड से छुड़ाया था। वे बपतिस्मे में उसके साथ मरकर सभी धार्मिक रीतियों और सांसारिक फ़िलॉसफ़ियों से भर गए थे। पौलुस उन्हें उन सब बातों में वापस नहीं जाने देना चाहता था जिनसे उन्हें छुड़ाया गया था। यदि वे जाते तो उनके जीवनों में यीशु का कोई स्थान नहीं होना था।

अपने जीवनों को अपने ही नियमों और मानवीय तर्कों के ऊपर बनाने वाले लोग अपने आप को धोखा देते हैं और घमण्ड से भरे हुए हैं। कुलुस्सियों को दुराचार और दुष्ट कामों के साथ-साथ संसार की आदि शिक्षा को ठुकराना आवश्यक था। अध्याय 3 में हम यीशु के स्वभाव में पाए जाने वाले गुणों को पहनकर संसार की बातों को उतारकर यीशु में पाए जाने वाले जीवन के उच्च ढंग को अपनाने की पौलुस की ताड़ना को देखेंगे। वह मसीही व्यक्ति का पृथ्वी पर बहुतायत के जीवन का एकमात्र स्रोत और आने वाले जीवन में स्वर्गीय घर की एकमात्र आशा है।

और अध्ययन के लिए

''आराधना''

कई यूनानी शब्दों का अनुवाद ''आराधना'' हुआ है:

1. *thrēskeia*— का अर्थ धार्मिक पर्व (याकूब 1:26, 27)।
2. *proskuneō*— ''आराधना में झुकना, श्रद्धा दिखाना'' (मत्ती 4:10; लूका 4:8)।
3. *latreuō*— ''उपासना'' (मत्ती 4:10; लूका 4:8)।
4. *eusebeō*— ''श्रद्धा और गहरा सम्मान दिखाना'' (प्रेरितों 17:23)।
5. *therapeuō*— ''सेवा करना और श्रद्धा दिखाना'' (प्रेरितों 17:25)। नये नियम में इस शब्द का अर्थ अधिकतर ''चंगा करना, बहाल करना'' है (मत्ती 4:24; 8:7)।

6. *sebazomai*— ''उपासना'' (रोमियों 1:25; नये नियम में केवल यहां)।
7. *sebō*— ''आराधना की औपचारिक रीतियां'' (रोमियों 15:9; प्रेरितों 18:13)।

ऊपर दिए गए यूनानी शब्दों में से एक शब्द जो आराधना में अंग्रेज़ी के ''*worship*'' के बहुत निकट है, वह *proskuneō* है, जिसका मूल अर्थ है ''की ओर झुकना।'' यह किसी बड़े प्राणी की आराधना के सम्मान का संकेत (यूहन्ना 4:24)। आराधना से विशाल अर्थ दिखाते हुए *Latreuō* नमन करने तक सीमित नहीं है। यह किसी अलौकिक शक्ति के लिए की जाने वाली सेवा हो सकती है चाहे वह परमेश्वर की हो (लूका 1:74) या परमेश्वर के अलावा किसी और की (प्रेरितों 7:42; रोमियों 1:25), या सामान्य अर्थ में सेवा (इब्रानियों 8:5; 13:10)।

मसीही लोगों द्वारा की जाने वाली हर बात को ''आराधना'' नहीं माना जा सकता है क्योंकि हर कार्य परमेश्वर के प्रति सम्मान की अभिव्यक्ति नहीं है। हर *proskuneō* का ''आत्मा और सच्चाई से'' होना आवश्यक है (यूहन्ना 4:23, 24); इस कारण यह परमेश्वर द्वारा प्रकट किए गए पैरामीटरों तक सीमित है। मसीही लोगों पर लागू करने पर *latreuō* में जीवितों की कोई भी गतिविधि, जो यीशु की सेवा में की गई हो। ऐसी हर गतिविधि परमेश्वर के प्रति सम्मान के अर्थ में आराधना नहीं है। मसीही व्यक्ति परमेश्वर की सेवा (*latreuō*) कर सकता है, जब वह अपनी देह और इसके कामों की उचित देखभाल करता है। परमेश्वर हम से ऐसी सेवा करने की अपेक्षा करता है, परन्तु उन्हें परमेश्वर की आराधना में लाए जाने की आवश्यकता नहीं है। हर गतिविधि, जो सही है उसकी सेवा में की गई हो सकती है; परन्तु यदि यह उसके बाहर है जिसे यीशु ने आराधना में इस्तेमाल किए जाने के लिए प्रकट किया है तो यह परमेश्वर की आराधना के लिए अनुपयुक्त है।

प्रासंगिकता

शिरोमणि को पकड़े रखना

यीशु उस नींव के रूप में देने के बाद जिस पर हमें बनाना है (देखें 1 कुरिन्थियों 3:10), पौलुस यीशु से दूर जाने के विरुद्ध चेतावनियां देने लगा, जो सबसे पहले उनका सृष्टिकर्त्ता और सबके ऊपर है। पिछले भागों में उसने कुलुस्सियों को लोगों को मनाने वाले तर्क (2:4) फ़िलॉसफ़ी, व्यर्थ धोखे या संसार की आदि शिक्षा (2:8) से लोगों को उन्हें भ्रमित करने देने के विरुद्ध चेतावनी दी थी। 2:16-23 में उसने यहूदी रीतियों (2:16), अपने आपको सताने (2:18, 23) स्वर्गदूतों की पूजा (2:18), सिर को पकड़े न रखने (2:19), संसार की विधियों (2:20), और अपने बनाए धर्म (2:23) के विरुद्ध चेतावनी दी।

यहूदी रीतियां। व्यवस्था की विधियों को क्रूस पर कीलों से जड़ दिया गया है (2:14), जिसमें मसीही लोगों को व्यवस्था से छुड़ा लिया गया है (गलातियों 5:1)। इस तथ्य पर रोमियों, गलातियों और इब्रानियों में सबसे अधिक विस्तार से बात की गई है। रोमियों में पौलुस ने व्यवस्था से सम्बन्धित ये बातें समझाईं:

1. व्यवस्था से कोई प्राणी धर्मी नहीं ठहराया जाता (3:20)।
2. व्यवस्था परमेश्वर की धार्मिकता नहीं देखती है (3:21)।
3. वारिस होना विश्वास के द्वारा धर्मी होने पर आधारित है (4:13)।
4. लोग व्यवस्था के द्वारा वारिस नहीं बनते (4:14)।
5. व्यवस्था क्रोध उपजाती है (4:15)।
6. हम व्यवस्था के लिए मर गए हैं (7:4)।
7. हमें व्यवस्था से छुड़ा लिया गया है (7:6)।
8. मसीह व्यवस्था का अन्त है (10:4)।

गलातियों में पौलुस को चिंता थी कि कुछ लोग व्यवस्था के द्वारा धर्मी ठहराए जाने की तलाश में हैं (गलातियों 1:6, 7)। इस पत्र में उसने समझाया:

1. कोई व्यवस्था के द्वारा धर्मी नहीं ठहराया जाता (2:16)।
2. उसे यानी पौलुस को व्यवस्था के लिए मरना आवश्यक था (2:19)।
3. यदि धार्मिकता व्यवस्था के द्वारा मिलती है तो मसीह व्यर्थ में मरा (2:21)।
4. जो व्यवस्था के अधीन, वे स्राप के अधीन हैं (3:10)।
5. व्यवस्था तब तक प्रभावी थी जब तक मसीह नहीं आया (3:19)।
6. अब जबकि विश्वास आ चुका है तो हम शिक्षक अर्थात व्यवस्था के अधीन नहीं हैं (3:25)।
7. हम दासी की संतान नहीं हैं, जो व्यवस्था को दिखाती थी (4:31)।

इब्रानियों की पुस्तक का उद्देश्य यह दिखाना था कि मसीह से जुड़ी बातें पहली वाचा के अधीन बातों से जिनमें वे स्वर्गदूत जिनके द्वारा व्यवस्था दी गई (1:4; 2:2); मूसा जिसे व्यवस्था दी गई (3:3); याजक जिन्हें व्यवस्था के द्वारा ठहराया गया (7:11, 12); वाचा और व्यवस्था के न्यायी (7:22; 8:6); और तम्बू (9:11) से श्रेष्ठ हैं। यीशु वह देता है, जो उत्तम है इसलिए मूसा की व्यवस्था खत्म हो गई।

1. व्यवस्था को बदल दिया गया है (7:12)।
2. व्यवस्था को लोप कर दिया गया है (7:18, 19)।
3. व्यवस्था की वाचा को पुराना ठहरा दिया गया है (8:13)।
4. यीशु ने दूसरी को स्थापित करने के लिए पहली वाचा को हटा दिया (10:9)।

व्यवस्था रद्द कर दी गई, हटा दी गई, क्रूस पर कीलों से जड़ दी गई है, इस कारण हमें चाहिए कि यदि हम व्यवस्था की विधियों को नहीं मानते हैं तो दूसरों को अपना न्याय न करने दें या हमें दोषी न ठहराने दें (कुलुस्सियों 2:14-16)। ये विधियां केवल मसीह की शिक्षा की वास्तविकताओं की छाया थी (2:17; इब्रानियों 10:1)।

धोखा खाने से बचें। संसार की विचित्र धार्मिक रीतियों ने मसीही लोगों की शिक्षाओं को प्रभावित किया है। वे यीशु की सच्ची शर्तों से लोगों को दूर कर देती हैं। उन में आत्म-इनकार आत्म-प्रताड़ना जैसी रीतियां हैं, जो साधुओं की तरह लोगों पर थोपी गई हैं। स्वर्गदूतों को आदर और सम्मान लेते दिखाया गया है। जोसेफ स्मिथ द्वारा एक स्वर्गदूत से जुड़े दावे की तरह जिसमें उसने उसका नाम मोरोनी बताया, कइयों ने दावा किया है कि स्वर्गदूतों ने उन्हें दर्शन देकर संदेश दिया है। इन कैथोलिक चर्च तथा अन्य लोगों द्वारा दावा किए जाने वाले दर्शनों के दावे भी हैं।

हम इन दावों से भ्रमित न हों, विशेषकर जब उन दावों को करने वालों की शिक्षा स्पष्ट रूप में बाइबल की स्पष्ट शिक्षा के विपरीत हो। एक और सुसमाचार सुनाने वाले लोग स्वर्ग के श्राप के अधीन हैं। प्रेरितों, स्वर्गदूत या कोई और (गलातियों 1:8, 9)।

शिरोमणि को पकड़े रखना। नये नियम के कई वचनों में यीशु को सिर घोषित किया गया है, पर वह मनुष्य (1 कुरिन्थियों 11:3) कलीसिया (इफिसियों 1:22; 5:23), देह (कुलुस्सियों 1:18), और सारी प्रधानता और अधिकार (कुलुस्सियों 2:10) का सिर है। कहीं और उसे केवल सिर बताया गया है (इफिसियों 4:15; कुलुस्सियों 2:19)।

यीशु अपनी आत्मिक देह अर्थात कलीसिया का सिर है। जब तक हम उसे पकड़े रहते हैं हम धोखे में नहीं आएंगे। यदि हम मनुष्यों की शिक्षाओं को पकड़ने के लिए उसकी सच्चाई से फिर जाते हैं तो हम कई विचित्र शिक्षाओं और रीतियों में भटक जाएंगे।

यीशु को पकड़े रहने की ज़िम्मेदारी हमारी है। वह हमें कभी नहीं छोड़ेगा, और न त्यागेगा, परन्तु जब तक उसकी आज्ञाओं को मानते हैं तब तक वह हमसे प्रेम करता रहेगा (यूहन्ना 15:9, 10)। जब तक हम यीशु को पकड़े रहते हैं तब तक वह हमें पकड़े रहेगा।

यीशु अच्छा चरवाहा है (यूहन्ना 10:11; 1 पतरस 5:4)। यदि हम उसकी भेड़ें हैं तो हम उसके स्वर को सुनकर उसके पीछे-पीछे चलेंगे। हम अजनबियों के पीछे नहीं चलेंगे। उसके पीछे चलकर हम कभी भटकेंगे नहीं। हमें केवल एक ही चरवाहे के पीछे चलना है और केवल एक ही झुण्ड के लोग होना है (यूहन्ना 10:2-5)। एक अर्थ में चरवाहा भेड़ों का सिर है। वे चरवाहे की ओर देखती हैं कि वह उनके आगे आगे चले और उन्हें अगुआई दे। वह उनका अगुवा, उनका सिर है ताकि वे उसके पीछे चलें क्योंकि वे उसकी आवाज़ को पहचानती हैं। यीशु अपनी भेड़ों की अगुआई इसी तरह करता है (यूहन्ना 10:16)।

एक अर्थ में चरवाहा भेड़ों का सिर है। वे चरवाहे की ओर देखती हैं कि वह उन के आगे चल कर उन की अगुआई करे। वह उन का अगुआ, उन का सिर है और वे उस के पीछे चलते हैं क्योंकि वे उसकी आवाज़ पहचानते हैं (यूहन्ना 10:27)।

कलीसिया के सिर के रूप में यीशु का आदर करना हमारा कर्त्तव्य है। इसका कोई सांसारिक सिर नहीं है, केवल एक स्वर्गीय सिर है। कोई भी व्यक्ति या लोगों का समूह जो कलीसिया पर सिर बनने की इच्छा करता है वह यीशु के साथ मुकाबला करता है, जो कलीसिया का एक ही चरवाहा और सिर है। हमें अपनी आत्मा के सिर के रूप में उसे पकड़े रखना और उन शिक्षाओं में न जाना आवश्यक है जो उसकी ओर से नहीं मिली हैं।

संसार की विधियां। बपतिस्मे में हमारे लिए संसार की विधियों के लिए जो कि वे पाबन्दियां हैं, जो यीशु ने नहीं बनाई हैं, मसीह के साथ मरना आवश्यक है। धर्मों में दो अलग-अलग चरम

होते हैं: वे नियम बनाना जो परमेश्वर ने नहीं बनाए और उन नियमों को दरकिनार कर देना जो परमेश्वर ने बनाए हैं। दोनों ही बातें गलत हैं। 2:16-23 में पौलुस ने मनुष्य के बनाए नियमों के विरुद्ध चेतावनी दी।

हमारा कर्त्तव्य यीशु की शिक्षा को मानने का है (मत्ती 28:20) न कि संसार की विधियों को। ये विधियां हमारे लिए परमेश्वर के साथ हमारा सम्बन्ध सुधारने में सहायता करने में मान्य लग सकती हैं परन्तु हमें उसके और निकट लाने में इनका कोई महत्व नहीं है। धार्मिक रीतियां हमें भाती हैं और हमें उपयोग करने के लिए समझदारी भरी लगती हो सकती हैं पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वे परमेश्वर की बुद्धि पर आधारित हैं।

मनुष्यों का बनाया धर्म। कुछ धार्मिक शिक्षाओं में बताया जाता है कि धार्मिकता उपवास रखकर, अविवाहित रहकर, जो विवाहित हैं उनके लिए शारीरिक सम्बन्धों से दूर रहकर, शारीरिक प्रताड़ना और अपने आपको दुख देने वाली शारीरिक पाबंदियों से धार्मिकता को पाया जा सकता है। इनमें से कोई भी बात अपने आप में धार्मिकता नहीं दिला सकती।

हमें सभी धार्मिक रीतियों का मूल्यांकन यीशु की शिक्षाओं से करना आवश्यक है। सब बातों में हमें मसीह को पकड़े रखना, और यहूदी रीतियों, मानवीय धर्मों या सांसारिक सोच से भ्रमित न होना आवश्यक है। केवल यीशु ही अगुवा, चरवाहा और सिर हो।

मसीह ने मसीही लोगों को व्यवस्था से स्वतन्त्र कराया (2:16, 17)

मसीही लोग व्यवस्था के नियमों से छूट गए। खाने-पीने, पर्वों और सब्तों के नियम हम पर लागू नहीं होते हैं (इफिसियों 2:14, 15)।

हमें व्यवस्था की विधियों को मिटाने के लिए यीशु मसीह को धन्यवाद देना चाहिए। व्यवस्था के खत्म होने का अर्थ यह नहीं है कि मसीही लोग पापपूर्ण जीवन जीने को मुक्त हैं (रोमियों 6:1-3)। अनुग्रह व्यक्ति को प्रभु के रूप में यीशु से या उसकी आज्ञाओं को मानने से मुक्त नहीं करता है (मत्ती 28:18-20; यूहन्ना 14:15, 21; 15:10; 1 कुरिन्थियों 7:19)।

व्यवस्था यीशु के द्वारा आने वाली वास्तविकताओं की केवल छाया थी (इब्रानियों 10:1)। परमेश्वर ने मूसा की व्यवस्था के द्वारा समझाया कि क्षमा लहू के बहाए जाने पर निर्भर है (इब्रानियों 9:22)। पुरानी व्यवस्था ने मनुष्यजाति को वास्तविकता अर्थात यीशु के आने पर उसकी आवश्यकता को समझने के लिए तैयार किया (गलातियों 3:24, 25)।

परन्तु मूसा की व्यवस्था से क्षमा नहीं दिलाई क्योंकि पशुओं का बलिदान पाप क्षमा नहीं कर सकता था (इब्रानियों 10:4)। व्यवस्था के द्वारा धर्मी ठहराए जाने के लिए व्यक्ति के काम बिना पाप के होने आवश्यक थे। व्यवस्था के अधीन रहने वाले हर व्यक्ति ने पाप किया जो इस बात को दिखाता है कि कामों के द्वारा किसी का उद्धार नहीं हो सकता था (गलातियों 2:16)। परमेश्वर ने सदा के लिए साबित कर दिया कि मनुष्य जाति को विश्वास के द्वारा उद्धार की आवश्यकता है न कि कामों के द्वारा उसने एक धर्मी व्यक्ति अब्राहम को चुना जिसने अपनी संतान को यहोवा के मार्ग में बने रहना सिखाना था (उत्पत्ति 18:19) और उसकी संतान को उनके आस पास के बुरे वातावरण से अलग किया (व्यवस्थाविवरण 7:3, 4)। इन लाभों के बारे में अन्यजातियों की तरह उन्होंने परमेश्वर का पाप किया (रोमियों 3:9, 10)।

कई वर्षों तक अनुकूल माहौल में इस्राएलियों को व्यवस्था के अधीन रहने देकर परमेश्वर ने साबित कर दिया कि कोई मनुष्य पाप रहित जीवन नहीं जी सकता है।

विकास का हमारा स्त्रोत मसीह है (2:19)

शारीरिक लालसाओं पर काबू पाने के लिए सांसारिक फ़िलॉसफ़ियां बेकार हैं। मसीही लोगों को सहायता के लिए यीशु की ओर देखना आवश्यक है। वह आत्मिक विकास का वह स्त्रोत है जिसके द्वारा संसार की अपेक्षाओं के लिए मरने पर हम आत्मिक उन्नति कर सकते हैं।

मसीह मसीही व्यक्ति की हर आवश्यकता को पूरा करता है। दार्शनिक और संसार के बड़े बड़े गुरु यीशु की शिक्षाओं में और कुछ नहीं जोड़ सकते। जॉन ग्रीनलीफ विटियर ने लिखा है:

सच्चाई की खोज हम संसार में करते हैं;
उकरे हुए पत्थर और लिखे हुए पत्रे में से,
आत्मा के फूलों के पुराने सब बग़ीचों में से
हम बढ़िया, साफ़, सुन्दर फलों को छांटते हैं;
फिर, बेहतरीन के निढाल खोजी,
हम अपनी तलाश से उसे ढूंढ़ने लिए
जो सब ज्ञानियों ने कहा उस पुस्तक में है
जिसे हमारी माताएं पढ़ा करती थीं
वापस लौट आते हैं।[22]

हर सदस्य के लिए कलीसिया के विकास में योगदान देना आवश्यक है। दोहरे सम्बन्ध से जो मसीही लोगों का है, जिसमें मसीह के साथ सम्बन्ध और एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध होता है, आत्मिक विकास के लिए आवश्यक खुराक मिलती है। मिज़ोरी में ग्यारह प्वायंट वाली नदी को ग्यारह चश्मों से पानी मिलता है। इस प्रकार ग्यारह स्त्रोतों से एक नदी बनती है। मसीही लोगों के साथ इसके उलट होता है क्योंकि एक ही स्त्रोत से सब मसीही लोगों के लिए सामर्थ निकलती है। हम स्त्रोत यीशु से लेकर एक-दूसरे के लिए खुराक देते हैं।

मसीही विकास का एकमात्र सच्चा स्त्रोत यीशु है। वह आत्मिक सामर्थ की न खत्म होने वाली स्थिति है। वह पर्याप्त, कभी असफल न होने वाला और सदा उपलब्ध है। उसकी ओर देखकर मसीह रोज अपने ही विकास के लिए आश्वस्त हो सकते हैं। मसीह के लिए बढ़ने में दूसरों को सहायता कर सकते हैं।

मसीह हमें मनुष्य के नियमों से छुड़ाता है (2:20-22)

मसीही लोग मनुष्यों की आज्ञाओं और शिक्षाओं से मर गए हैं। स्वाभाविक प्रवृत्ति दूसरों की तरह जीने, उनकी तरह रहने और अपने आस-पास के लोगों के जीवनों को चलाने वाले नियमों को मानने की होती है। जीवन के ''झुण्ड'' का ढंग यही है। मतदान से संकेत मिलता है कि बहुमत का क्या विचार है। राजनीति में और जीवन के अन्य क्षेत्रों में बहुमत का शासन स्वीकार्य हो सकता है, परन्तु नैतिक रूप में और आत्मिक रूप में क्या सही है यह लोकमत से तय नहीं

होता है। बाइबल को ही हमें यह बातने का अधिकार है कि मसीह के लिए कैसे जीएं।

अपने आप बनाए गए नियम मूर्खतापूर्ण हैं क्योंकि वे कामुक इच्छाओं को दबा नहीं सकते हैं। वे उन वस्तुओं के इस्तेमाल को वश में रखने के लिए बनाए गए हैं जो नाश हो जाने वाली हैं; आत्मिक जीवन में सहायता में वे कुछ नहीं कर सकते। एक उदाहरण बॉडी बिल्डिंग का मिलता है। अधिक से अधिक मांसपेशियां बनाने के लिए कठिन से कठिन नियमों का पालन किया जाना आवश्यक है, परन्तु सबसे प्रभावशाली यह कि यह भी एक दिन कब्र में नष्ट हो जाएंगी। आवश्यक नहीं कि बॉडी बिल्डिंग से आत्मिक सामर्थ मिलती हो। शमशुन इस सच्चाई का उदाहरण है। उसकी बड़ी सामर्थ जो उसे परमेश्वर की ओर से दी गई थी, उसे एक नैतिक कमजोर होने से रोक नहीं पाई (देखें न्यायियों 14—16)। "क्योंकि देह की साधना से कम लाभ होता है, पर भक्ति सब बातों के लिए लाभदायक है, क्योंकि इस समय के और आने वाले जीवन की भी प्रतिज्ञा इसी के लिए है" (1 तीमुथियुस 4:8)।

मनुष्य के बनाए धर्म की मानवीय सोच में ज्ञान की बात दिखाई देती है। मानवीय मूल वाली रीतियों के लिए अच्छे तर्क दिए जा सकते हैं, परमेश्वर का ढंग मानवीय दृष्टिकोण से असामान्य लग सकता है। नामान एलीशा नबी से असहमत था (2 राजाओं 5:1–14)। उसने पहले से तय कर लिया था कि नबी के काम कैसे होने चाहिए। मानवीय तर्क से यरदन नदी में नहाने से कोढ़ से चंगाई नहीं मिलती, परन्तु मनुष्य के ढंग परमेश्वर के मार्ग नहीं हैं (देखें यशायाह 55:8, 9)।

हमें संसार के साथ मेल न खाने और अपने मनों को नया बनाने के द्वारा अपने शरीरों के बलिदान देकर परमेश्वर की सेवा करनी आवश्यक है (रोमियों 12:1, 2)। हमें केवल उसी की सेवा और उपासना (मत्ती 4:10) आत्मा और सच्चाई से करनी आवश्यक है (यूहन्ना 4:24)। सम्पूर्ण सच्चाई प्रकट कर दी गई है (यूहन्ना 16:13); मनुष्य के घमण्ड को जो कुछ लिखा गया है हमें उससे आगे जाकर मनुष्यों की व्यर्थ परम्पराओं और आज्ञाओं को मानने का कारण नहीं होना चाहिए (मत्ती 15:7–9; मरकुस 7:6–13; तीतुस 1:14)। मसीही लोगों को सब कुछ यीशु के नाम के अधिकार से करना आवश्यक है (कुलुस्सियों 3:17)।

टिप्पणियां

[1]पीटर टी. ओ'ब्रायन, *कोलोसियंस, फिलेमोन,* वर्ड बिब्लिकल कमैंट्री, अंक 44 (वाको, टैक्ससः वर्ड बुक्स, 1982), 141. [2]एडुअर्ड शवेज़र ने इस विचार की उपेक्षा की कि पूर्व छायावादी "वास्तविकता" यीशु द्वारा आरम्भ की गई शिक्षा हो सकती है। उसने लिखा, "केवल एक बात जो पक्की नहीं है वह यह है कि छाया के विपरीत वास्तविकता के रूप में मसीह ठहराया गया है या कलीसिया" (एडुअर्ड शवेज़र, *द लैटर टू द कोलोसियंस: ए कमैंट्री,* अनु. एंड्रयू चेस्टर [ज़्युरिचः बेन्ज़ाइगर वरलग, 1976; रिप्रिंट, मिनियापोलिसः आग्सबर्ग पब्लिशिंग हाउस, 1982], 158)। इसके अलावा बाउर ने सुझाव दिया कि इस वचन में अर्थ है "यथार्थ वास्तविकता, देह के रूपक में *वास्तविकता* जो ***skia*** के वपरीत परछाई, *अपने आप में वस्तु* है ... कुलुस्सियों 2:17" (वाल्टर बाउर, *ए ग्रीक-इंग्लिश लैक्सिकन ऑफ़ द न्यू टैस्टामैंट एंड अदर अर्ली क्रिश्चियन लिटरेचर,* 3रा संस्क., संशो. एवं संपा. फ्रैडरिक विलियम डैंकर [शिकागोः यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रैस, 2000], 984)। [3]वही, 448. [4]देखें मत्ती 8:2; 9:18; 14:33; 15:25; 20:20; 28:9, 17; मरकुस 5:6; लूका 24:52. [5]इरेनयुस *अगेंस्ट हेरसीस* 2.32.5. [6]ई. के. सिम्पसन एंड एफ़. एफ़. ब्रूस, *कमैंट्री ऑन द एपिस्टल टू द इफिसयंस एंड द कोलोसियंस,* द न्यू इंटरनैशनल कमैंट्री ऑन द

न्यू टैस्टामैंट (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. ईर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1957), 248. [7]बाउर, 459. [8]''नहीं'' शब्द प्राचीन हस्तलेखों में नहीं मिलता। [9]बाउर 321. [10]ओ'ब्रायन, 144.

[11]पौलुस को मसीह का दर्शन पुनरुत्थान के बाद के तुरन्त होने वाले दर्शनों में सबसे बाद में, मिला था परन्तु मसीह ने एक अलग संदर्भ में प्रकाशितवाक्य की पुस्तक में यूहन्ना को दर्शन दिया। [12]शवेज़र, 162. [13]वही, 164. [14]रॉबर्ट जी. ब्रेचर एंड यूजीन ए. निडा, *ए ट्रांसलेटर्स हैंडबुक ऑन पॉल'स लैटर्स टू द कोलोसियंस एंड फिलेमोन, हैल्पस फॉर द ट्रांसलेटर्स* (न्यू यॉर्क: यूनाइटेड बाइबल सोसायटी 1977), 70. [15]एच. सी. जी. माउल, *द एपिस्टल्स टू द कोलोसियंस एंड टू फिलेमोन,* द कैम्ब्रिज बाइबल फॉर स्कूल्स एंड कॉलेजस (कैम्ब्रिज: यूनिवर्सिटी प्रैस, 1893; रिप्रिंट 1902), 114–15. [16]वही, 115. [17]ओ'ब्रायन, 150. [18]माउल, 115. [19]शवेज़र, 159. [20]ओ'ब्रायन, 153.

[21]वही, 155. [22]एच. आई. हेस्टर, *द हार्ट ऑफ़ हिब्रू हिस्ट्री: ए स्टडी ऑफ़ द ओल्ड टैस्टामैंट* (लिबर्टी, मिज़ोरी: विलियम ज्यूल प्रैस, 1951), 11 में जॉन ग्रीनलीफ़ वायटर, ''फ्रॉम ग्रेवन स्टोन एंड रिटन सक्रॉल।''